शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 7 अंक : 10 1 मई 2015

(वैशाख-ज्येष्ठ, विक्रम संवत् 2072)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

डॉ. नाथू लाल सुमन

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

नौरंग सहाय भारतीय 9460142051

कार्यालय प्रभारी

आलोक चतुर्वेदी 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग, जयपुर (राज.) 302001

दूरभाष: 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13, कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाष: 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at:

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-

आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

परिवर्तन से सशक्त होगी माध्यमिक शिक्षा - डॉ.रेखा भट्ट

आर्थिक उदारीकरण व कॉर्पोरेट सेक्टर को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से वर्तमान में स्थापित किये गये निजी विद्यालयों की संख्या तेजी से बढ़ी है। सरकारी विद्यालय निजी विद्यालयों के समान विकसित व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने में असफल रहे हैं।

अनुक्रम

4. माध्यमिक शिक्षा बने राष्ट्रीय प्राथमिकता - सन्तोष पाण्डेय
8. स्वयं में पूर्ण हो माध्यमिक शिक्षा - विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
11. माध्यमिक शिक्षा में भटकाव ही भटकाव - बजरंगी सिंह
13. पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक शिक्षा - प्रो. मधुरमोहन रंगा
19. Madhyamik Shiksha:The Expectations - Dr. TS Girishkumar
22. परीक्षाओं में नकल की महामारी - डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
24. कदाचारों की त्रासदी से घिरी ताकत.. - जगमोहन सिंह राजपूत
26. परीक्षा मुक्त शिक्षा के लिए जरूरी बहस - प्रेमपाल शर्मा
28. शिक्षा की दुर्दशा - राजेन्द्र भाणावत
30. शिक्षा नहीं तो बोझ बन जाएंगे युवा - टीएसआर सुब्रमनियन
32. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का पुनर्गठन - एस. शंकर
34. उच्च शिक्षा का कायाकल्प जरूरी - डॉ. निरंजन कुमार
36. शिक्षा का संस्कृति के विकास में योगदान - डॉ. शिव शरण कौशिक
39. गतिविधि

Secondary Education: Adaptability or Ethics

❑ **Dr. A. K. Gupta**

The time is just right to have synthesis on personal beliefs, cultural concepts which at times may lead to emotional turmoil. A small interactive group may find proper solution to such problems. An educationist should consider following points e.g. formal or informal education, building up of a different personality which is expected to be dedicated to the nation and mankind, adult education or continuing education, hardening of philosophical concepts, understanding of routine financial concepts etc.

माध्यमिक शिक्षा बने राष्ट्रीय प्राथमिकता

❑ सन्तोष पाण्डेय

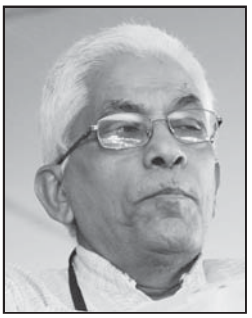

शिक्षा में उदारीकरण से निजी शिक्षा प्रदाताओं ने बड़ी संख्या में शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश किया। निजी शिक्षण संस्थाओं द्वारा अधिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की धारणा से निजी शिक्षण संस्थाओं की भागीदारी माध्यमिक शिक्षा में तेजी से बढ़ी। माध्यमिक शिक्षा का विस्तार तो हुआ, लेकिन जिस प्रकार विविधतापूर्ण शिक्षा व कौशल विकास की अपेक्षा थी, पूर्ण नहीं हो पायी। रोजगार के सीमित अवसरों तथा रोजगार की विविधतापूर्ण प्रकृति ने शनै शनै माध्यमिक शिक्षा को जड़ता की स्थिति में ला दिया है। माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता माध्यमिक शिक्षा संस्थानों की बढ़ती संख्या के साथ कदमताल नहीं कर पायी है।

संपादकीय

आज देश ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहाँ उपयुक्त शैक्षिक व्यवस्था, कार्यशील जनसंख्या को कुशल, दक्ष व प्रशिक्षित बनाकर भारत को विश्व की बड़ी आर्थिक शक्ति बना सकती है। भौतिक व प्राकृतिक पूंजी को उत्पादक बनाने हेतु दक्ष कार्यशील जनसंख्या आवश्यक है। भारत के समक्ष यह सुअवसर है कि वह अपने विशाल युवा मानवीय संसाधन का लाभ उठाकर एक समृद्ध व सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सके। जनसंख्या लाभांश की अवधारणा भी यही है, कि सम्पूर्ण विश्व में जब कार्यशील जनसंख्या (15-60 वर्ष) सिकुड़ रही होगी, तब भारत में यह संख्या तेजी से बढ़ रही होगी। भारत को वैश्विक उत्पादन का विशाल केन्द्र बनाने में युवा शक्ति सहायक हो सकती है। बशर्ते देश के पास तकनीकी दृष्टि से युक्त, प्रशिक्षित व उत्पादन कौशल से परिपूर्ण मानवीय संसाधन हों। यह लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से ही पूर्ण हो सकता है। शिक्षा प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा में संवर्गित है। इन में प्रत्येक स्तर की शिक्षा के उद्देश्य व लक्ष्य भिन्न होते हैं। माध्यमिक शिक्षा ऐसे आयुवर्ग को दायरे में लेती है, जो कार्यशील जनसंख्या का प्रथम सोपान होता है। यह 15-18 वर्ष की आयु को परिधि में लेती है, माध्यमिक शिक्षा की अवधि दो-दो वर्ष के कालखण्ड की होती है, जिनमें प्रथम दो वर्ष माध्यमिक (सेकेण्डरी) व बाद के दो वर्ष उच्च माध्यमिक (सीनियर सेकेण्डरी) होती है। इन दोनों ही कालखण्डों का मुख्य ध्येय युवाओं के जीवन को निश्चित दिशा देने, उन्हें कुशल बनाने व सामान्य समाजोपयोगी नागरिक बनाने के साथ-साथ उत्पादक व कुशल श्रमशक्ति के निर्माण का आधार तैयार करना है। स्वाभाविक रूप से माध्यमिक शिक्षा ही 15-18 वर्ष के आयु वर्ग को शिक्षित-प्रशिक्षित, दीक्षित व विभिन्न कौशल से युक्त नागरिक बनाने की अवस्था होती है। यही वह आधार बनाती है जिससे नये ज्ञान के सृजनकर्ता, जिज्ञासुवर्ग विकसित होता है, और उच्च शिक्षा भी उद्देश्यपूर्ण व गुणवत्तापूर्ण बनती है। वयस्क जीवन में प्रवेश के साथ ही भावी जीवन की दिशा निर्धारित होती है। माध्यमिक शिक्षा ही सामान्य शिक्षा, तकनीकी व विज्ञान की शिक्षा, चिकित्सा विज्ञान, विभिन्न वैज्ञानिक विधाओं में प्रवेश, कानूनी शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण शिक्षा, कृषि व उससे संबंधित शिक्षा विभिन्न व्यावसायिक विधाओं व कौशल का प्रवेश द्वार बनाती है। यह भारत की शैक्षिक व्यवस्था का वह महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसे उच्च प्राथमिकता देकर सुदृढ़ किया जाना अपेक्षित है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही भारत में माध्यमिक शिक्षा का विकास व विस्तार प्रारम्भ हो चुका था। इस समय की माध्यमिक शिक्षा में सफलता रोजगार के द्वार खोलने में समर्थ थी। परन्तु आजादी के बाद देश में आर्थिक विकास की गति तीव्र होने के साथ ही रोजगार के अवसरों की प्रकृति बदलने लगी व

विविधीकरण बढ़ा। नयी तकनीक का उपयोग बढ़ने से दक्ष श्रमिकों की माँग बढ़ी। इससे तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व दक्ष मानवीय संसाधनों का आवश्यकता अनुभव की गई। देश में शिक्षा का विस्तार प्रसार व प्रचार हुआ। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के साथ ही युवा मानवीय संसाधनों को विकसित करने हेतु सामान्य शिक्षा के साथ-साथ विज्ञान व तकनीकी कौशल विकसित करना आवश्यक हो गया। माध्यमिक शिक्षा को सुदृढ़ करने व गुणवत्तापूर्ण बनाने के प्रयासों को गति मिली। माध्यमिक शिक्षा में नामांकन दर में तीव्र विस्तार करने तथा छात्रों के साथ-साथ बालिका नामांकन दर में वृद्धि के प्रयासों से नामांकन दर तेजी से बढ़ी। बढ़ती मांग के अनुरूप माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय खोले गये शिक्षण कौशल में वृद्धि के लिये शिक्षक योग्यता वृद्धि हेतु शिक्षण प्रशिक्षण पर बल दिया गया। बढ़ती छात्र संख्या के कारण भौतिक संसाधनों में वृद्धि की गई। समाजोपयोगी नागरिक निर्माण व छात्र के व्यक्तित्व निर्माण को प्रेरित करने की दृष्टि से सह शैक्षिक गतिविधियों को नई दिशा दी गई। इस सम्पूर्ण परिदृश्य में बड़ा परिवर्तन देश के वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ने व उदारीकरण की नीतियाँ अपनाने से उद्योग व व्यापार में ही प्रतिस्पर्द्धा नहीं बढ़ी, वरन् शिक्षा का क्षेत्र भी प्रतिस्पर्धी बनने लगा। शिक्षा में उदारीकरण से निजी शिक्षा प्रदाताओं ने बड़ी संख्या में शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश किया। निजी शिक्षण संस्थाओं द्वारा अधिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की धारणा से निजी शिक्षण संस्थाओं की भागीदारी माध्यमिक शिक्षा में तेजी से बढ़ी। माध्यमिक शिक्षा का विस्तार तो हुआ, लेकिन जिस प्रकार विविधतापूर्ण शिक्षा व कौशल विकास की अपेक्षा थी, पूर्ण नहीं हो पायी। रोजगार के सीमित अवसरों तथा रोजगार की विविधतापूर्ण प्रकृति ने शनै शनै माध्यमिक शिक्षा को जड़ता की स्थिति में ला दिया है। माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता माध्यमिक शिक्षा संस्थानों की बढ़ती संख्या के साथ कदमताल नहीं कर पायी है। इसके लिये मुख्यत: भौतिक व वित्तीय संसाधनों की सीमितता, सामान्य शिक्षा व शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था की कमजोरी, मानकों के अनुरूप शिक्षकों की कमी, अस्थायी भर्ती व्यवस्था, अल्प वेतन व शोषणकारी सेवा शर्तों के कारण उत्तरदायित्वपूर्ण शिक्षण व कार्य संस्कृति का अभाव, पाठ्यक्रमों का अरुचिकर होना, पाठ्यपुस्तकों में बार-बार परिवर्तन, परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था को उद्देश्यपरक बनाने की असफलता, महानगरीय, शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षण स्तर में भारी विषमता, संसाधनों की विषमता, कमजोर निरीक्षण व नियंत्रण व्यवस्था जैसे कारण उत्तरदायी माने जाते हैं। इनका समुचित हल ढूंढे बिना गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा की कल्पना निरर्थक है। ऐसा भी नहीं है कि इन बाधाओं को दूर करने के सक्रिय प्रयास नहीं किये गये हैं। माध्यमिक शिक्षा को सुदृढ़ करने के लिये केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् एनसीईआरटी, गठित की गई है। केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों व मॉडल स्कूलों की स्थापना की गई है। शिक्षक प्रशिक्षण के लिये नेशनल काउंसिल फार टीचर्स एजूकेशन का गठन हुआ है। राज्यों में इसी प्रकार की संस्थायें बनायी गई हैं। इन सबसे अपेक्षित परिणाम नहीं आने पर राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा मिशन प्रारंभ किया गया है। इस मिशन के द्वारा माध्यमिक शिक्षा के विस्तार करना व स्तर में सुधार लाना, हर 5 किलो मीटर के दायरे में कम से कम एक उच्च माध्यमिक विद्यालय स्थापित करना व समस्त प्रवेश के पात्र छात्रों व छात्राओं को माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत लाना अभीष्ट है। प्रयास है कि 2017 तक सभी पात्र छात्रों-छात्राओं को निकटस्थ ही माध्यमिक शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो। 'ड्रॉप आउट' की समस्या माध्यमिक शिक्षा में भी विद्यमान है। इसका निराकरण भी आवश्यक है। दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत ओपन स्कूलों को बढावा दिया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों, छात्राओं के विद्यालयों व छात्रावासों की व्यवस्था पर ध्यान अपेक्षित है। इस बात के प्रयास किये जा रहे हैं कि भौतिक संसाधनों, निर्धनता, सामाजिक व लैंगिक विषमता के कारण कोई छात्र या छात्रा माध्यमिक शिक्षा से वंचित न हो पाये। इस प्रकार का प्रयास है कि माध्यमिक शिक्षा में भौतिक संसाधन निर्धारित मानकों के अनुरूप हों, शिक्षक व कर्मचारी भी निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप प्रदान किये जायें। आर्थिक-सामाजिक रुकावटें शिक्षा में बाधक न बन सकें, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करायी जाय जिससे विद्यार्थियों की बौद्धिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्षमता पूर्णता प्राप्त कर सके।

संक्षेप में माध्यमिक शिक्षा को सुदृढ, उपयोगी व उत्पादक बनाने को दृष्टिगत कर यह आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा में उच्च प्राथमिकता दी जाय। यह उच्च प्राथमिकता भौतिक संसाधनों में वृद्धि, माध्यमिक शिक्षा की कार्य संस्कृति में सुधार, नियमन, नियंत्रण व निरीक्षण की व्यवस्था को अधिक उद्देश्य परक बनाकर वर्तमान पाठ्यक्रमों को अद्यतन व रोचक बनाकर तथा शिक्षण में नवाचारों को प्रेरित करके प्रबंधन को विकेन्द्रित करना, स्थानीय नेतृत्व व अभिभावकों की सक्रियता को प्रेरित कर, सरकारी स्तर पर विकेन्द्रित शैक्षिक प्रशासन को प्रोत्साहित कर प्रदान की जा सकती है। माध्यमिक शिक्षा को अधिक उपयोगी व रोजगार परक बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम व विषयों में इस प्रकार का समायोजन किया जाय कि प्रत्येक छात्र को किसी न किसी कौशल (skill) में दक्षता, प्रशिक्षण व व्यावहारिक अनुभव प्राप्त हो। आज शिक्षा में तकनीक का प्रयोग बढ़ रहा है। सूचना तकनीक का उपयोग कम्प्यूटर शिक्षा को आवश्यक बनाकर तथा योग्य शिक्षकों का उपयोग स्कूलों के समूह में छात्रों को पढ़ाने में किया जा सकता है। ई लर्निंग के उपकरणों का प्रयोग भी बढ़ाया जाना चाहिये। माध्यमिक शिक्षा को प्राथमिकता देने के क्रम में यह आवश्यक है कि केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच अधिक सहयोगपूर्ण संबंध हों। वित्त पोषण के क्षेत्र में तथा शिक्षा में क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने में केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच सहयोग व समन्वयपूर्ण संबंध अति आवश्यक है। तब ही सुदृढ़ माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त हो सकेगा। ❑

परिवर्तन से सशक्त होगी माध्यमिक शिक्षा

❑ डॉ. रेखा भट्ट

आर्थिक उदारीकरण व कॉर्पोरेट सेक्टर को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से वर्तमान में स्थापित किये गये निजी विद्यालयों की संख्या तेजी से बढ़ी है। सरकारी विद्यालय निजी विद्यालयों के समान विकसित व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने में असफल रहे हैं। इस कारण माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा जन सामान्य से दूर होती जा रही है। इससे परम्परागत शिक्षण प्रणाली नष्ट हो रही है। यह हमें भविष्य में अच्छा कार्मिक तो देगी, किन्तु सुयोग्य नागरिक नहीं। इनमें विद्यार्थी केवल जानकारी प्राप्त करते हैं, ज्ञान नहीं। विद्यार्थी, इन निजी विद्यालयों तथा संबंधित प्रतियोगी परीक्षाओं में प्रवेश के कोचिंग के दोहरे शैक्षिक व आर्थिक भार को वहन करने को मजबूर है। वर्तमान माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षण में इन आर्थिक विषमताओं को दूर करना होगा।

भारत जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण राष्ट्र के विकास में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का संतुलित विकास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैश्विक दृष्टि से भारत अभी भी एक विकसित अर्थव्यवस्था और उन्नत समाज के रूप में काफी पीछे है। भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि के लिए पर्याप्त शिक्षित तथा दक्ष मानव संसाधन की आवश्यकता है। माध्यमिक शिक्षा ही विद्यार्थी को ज्ञान व कौशल विकास की क्षमता प्रदान करती है। माध्यमिक शिक्षण विद्यालयी शिक्षा का अन्तिम किन्तु निर्णायक पड़ाव होता है। यह केवल उच्च प्राथमिक शिक्षा को आगे जारी रखने या उच्च शिक्षा में प्रवेश की तैयारी का माध्यम नहीं है। वास्तव में यह व्यावहारिक शिक्षा की प्रारम्भिक निर्धारण अवस्था है।

माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आधुनिक व तकनीक आधारित समाज में रहते हुए, कार्य में दक्षता प्राप्त करना, आगे सीखने की प्रक्रिया को जारी रखना एवं समाज में सक्रिय भागीदारी निभाना है। यह विद्यार्थी के व्यक्तित्व निर्माण तथा निष्णात होने के बीच की कड़ी है, जहाँ संस्कृति एवं मूल्यों का संचरण करते हुए व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों स्तर पर विद्यार्थी को सक्षम बनाती है। माध्यमिक शिक्षा ही उसके भविष्य को सही आकार प्रदान करती है। पूरे विश्व में व्याप्त चुनौतियों तथा बढ़ती विज्ञान एवं तकनीकी प्रतिस्पर्द्धा में विद्यार्थी को अस्तित्व में बने रहने के लिए माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा ही तैयार करती है। इसके द्वारा विश्व में बढ़ती हुई शिक्षित व दक्ष कामगारों की माँग को भी पूर्ण किया जा सकता है।

सन् 1990 से वैश्विक स्तर पर उदारीकरण के बाद से माध्यमिक शिक्षा में ही विद्यार्थी रोजगार के अवसर तलाशने लगे हैं। हजारों भारतीय छात्र विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों से माध्यमिक शिक्षा उत्तीर्ण कर छोटे-मोटे कामों के लिए अरब, खाड़ी के देशों, अमेरिकी एवं यूरोपीय देशों में आजीविका हेतु पलायन कर अच्छी आय का स्रोत प्राप्त कर रहे हैं। देश की कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत भाग 14 से 18 वर्ष की आयु वर्ग का है। वर्तमान का यह आयु वर्ग, देश की सामाजिक पूँजी का भावी स्रोत होगा। वर्तमान में माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों को श्रम कार्यों में आवश्यक कौशल व दक्षता का प्रशिक्षण प्रदान कर गरीबी व बेरोजगारी जैसी समस्याओं को भविष्य में दूर किया जा सकेगा।

वर्तमान सरकार द्वारा अधिक से अधिक विद्यार्थियों को माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर

पर कई सुविधाएँ शिक्षा सुलभ करवाने के प्रयास किये जा रहे है, जिनमें 5 से 8 कि.मी. दायरे में प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना, प्रत्येक ग्राम पंचायत में आदर्श स्कूल बनाना, शिक्षा का बजट 16 प्रतिशत बढ़ा देना, विद्यालयों से दूर स्थित विद्यार्थियों को परिवहन शुल्क उपलब्ध कराना, छात्रावासों की सुविधा देना, छात्रवृत्ति योजनायें आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

ये प्रयास माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए आवश्यक हैं किन्तु शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए विद्यालयों में वास्तविक शिक्षण कार्य आवश्यक है। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों की कार्यप्रणाली में नियमितता व पारदर्शिता के लिए अभिभावकों, शिक्षकों, जनप्रतिनिधि एवं शिक्षा विशेषज्ञों की जिम्मेदारी, समन्वय एवं सहभाग आवश्यक हैं।

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में आर्थिक प्राथमिकताओं और मूल्यों के बीच अब आन्तरिक विरोध उभरकर सामने आने लगा है। अत: सरकार शिक्षा के क्षेत्र में माध्यमिक स्तर पर वरीयता से निवेश करे तथा तकनीकी, व्यावसायिक व आधारभूत आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा नीति में परिवर्तन लाये। माध्यमिक शिक्षा में नवाचार को बढ़ावा देते हुए इसे बहुद्देशीय व रोजगार परक बनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा में स्वरोजगार को बढ़ावा देते हुए आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए लघु उद्यमिता, हस्तकला तथा लघु कृषि जैसे विषय रखे जायें। लघु उद्यमिता के तहत लघु उद्योग जैसे फूड प्रोसेसिंग, टेक्सटाईल डिजाईनिंग, मैन्युफैक्चरिंग कौशल में प्रशिक्षण दिया जाये। उद्यमिता प्रोत्साहन एवं प्रतिभाओं के उपयोग हेतु - ऑटोमोबाइल, बिजली के कार्य, प्लम्बर ट्रेनिंग, स्टोन प्रोसेसिंग व सूचना प्रौद्योगिकी जैसे प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जा सकते हैं। वहीं लघु कृषि जैसे विषय रखे जाने से, भारत जैसे कृषि प्रधान देश में भावी नागरिक, छोटे स्तर पर की जाने वाली खेती को उन्नत व लाभकारी बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। ये पाठ्यक्रम उच्च प्राथमिक कक्षा के बाद लागू किये जा सकते हैं। सामाजिक सरोकारों से जुड़े पाठ्यक्रम जैसे - पर्यावरण संरक्षण, सार्वजनिक सफाई, प्रदूषण रोकथाम, प्राकृतिक संसाधनों के विकल्प जैसे विषयों से सार्वजनिक क्षेत्र में प्रबन्धन द्वारा रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाये जा सकते हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में कम्प्यूटर की अधिक लागत व रखरखाव के कारण कम्प्यूटर का उपयोग सीमित रह जाता है। अत: पुरानी सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की विभिन्न वितरण प्रणालियाँ - रेडियो, अभिलिखित, ऑडियो-विडियो तथा टेलीविजन प्रसारण दूरस्थ व ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी उपयोगी है।

कम्प्यूटर व मल्टीमीडिया तकनीक सहित सूचना व संचार प्रौद्योगिकी उच्च माध्यमिक शिक्षा के शक्तिशाली उपकरण एवं तेजी से बढ़ते हुए प्रभावशाली माध्यम हैं। इस तकनीक से ऑन-लाईन शिक्षा विद्यार्थी को इच्छानुसार अध्ययन के चुनाव का अवसर प्रदान करती है। उच्च माध्यमिक स्तर पर तकनीकी प्रयोग इसके वृहद् एवं विश्लेषणात्मक पाठ्यक्रम में अत्यन्त उपयोगी हैं, वहीं तत्काल परीक्षा (Online Exam) व कक्षाकक्ष चर्चा (Class Room Discussion) को भी पी.पी.टी. एवं इन्टर एक्टिव व्हाईट बोर्ड द्वारा सक्षम बनाती है।

आर्थिक उदारीकरण व कॉर्पोरेट सेक्टर को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से वर्तमान में स्थापित किये गये निजी विद्यालयों की संख्या तेजी से बढ़ी है। सरकारी विद्यालय निजी विद्यालयों के समान विकसित व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने में असफल रहे हैं। इस कारण माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा जन सामान्य से दूर होती जा रही है। इससे परम्परागत शिक्षण प्रणाली नष्ट हो रही है। यह हमें भविष्य में अच्छा कार्मिक तो देगी, किन्तु सुयोग्य नागरिक नहीं। इनमें विद्यार्थी केवल जानकारी प्राप्त करते हैं, ज्ञान नहीं। विद्यार्थी, इन निजी विद्यालयों तथा संबंधित प्रतियोगी परीक्षाओं में प्रवेश के कोचिंग के दोहरे शैक्षिक व आर्थिक भार को वहन करने को मजबूर हैं। वर्तमान माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षण में इन आर्थिक विषमताओं को दूर करना होगा।

कामकाजी विद्यार्थियों, महिलाओं व परीक्षा में अनुत्तीर्ण छात्रों के शिक्षण के लिए दूरस्थ शिक्षा बेहतर विकल्प है। वर्तमान में NIOS (National Institute of Open School) शैक्षिक, व्यावसायिक व जीवन संवर्द्धन पाठ्यक्रम प्रदान करता है। अभी तक इनमें गुणवत्ता निर्धारण के लिए कोई नीति निर्धारित नहीं थी, किन्तु अब इन ओपन स्कूल में पुस्तकालय, इन्टरनेट, ई लर्निंग व सृजनात्मक प्रयोगशालाओं की सुविधाओं को बढ़ाया गया है। अत: इनमें प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थी का रुझान बढ़ा है।

आधारभूत परिवर्तनों से वर्तमान में प्रचलित माध्यमिक शिक्षा को सुदृढ़ बनाया जा सकता है ताकि माध्यमिक स्तर पर विद्यालय ज्ञान प्राप्त करने का स्थान बनें, साथ ही भविष्य में आवश्यक कौशल का प्रभावशाली तरीके से तकनीकी एवं व्यावसायिक प्रबन्धन करने के संस्थान भी बनें। तभी वैश्विकरण के इस दौर में सीमित समय व सीमित स्थान में निर्धारित पूँजी, साधन व ज्ञान के विनिमय से कई नये मार्ग प्रशस्त होंगे। इस प्रकार यदि माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा बढ़ती सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम बनेंगे तो इसमें किया गया निवेश, राष्ट्रीय विकास के लिए पर्याप्त आर्थिक लाभ दे सकेगा तथा वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा में भारत आगे बढ़ सकेगा। ❑

व्याख्याता (रसायन शास्त्र), राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

स्वयं में पूर्ण हो माध्यमिक शिक्षा

❑ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

शिक्षण ऐसा हो कि बच्चे स्पष्ट चिन्तन को अभिव्यक्त कर सकें। विद्यालयों में विविध प्रकार की सह शैक्षिक गतिविधियों को संचालित करने तथा प्रत्येक शिक्षक द्वारा उनमें भागीदारी निभाने की अपेक्षा की गई। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखने की जिम्मेदारी स्कूल की मानते हुए स्वास्थ्य शिक्षा पर जोर दिया गया। माध्यमिक शिक्षा के अन्त में एक ही सार्वजनिक परीक्षा आयोजित करने तथा व्यक्तिनिष्ठता को कम करने हेतु वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया गया। अंकों के स्थान पर ग्रेड देने का सुझाव भी माध्यमिक शिक्षा आयोग ने दिया था।

माध्यमिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानकर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल ने 1948 से ही सरकार पर सुधार का दबाव बनाना प्रारम्भ कर दिया था। परिणामस्वरूप माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य, लक्षण तथा प्रयोजन निर्धारित करने हेतु डॉ.लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग गठित किया गया था। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने 1835 से 1948 तक की माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा कर उसकी कमियों का पता लगा कर सुधार के सुझाव दिए थे।

माध्यमिक शिक्षा की कमियां

आयोग ने माना कि माध्यमिक विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा जीवन से कटी हुई है। शिक्षा पाठ्यक्रम परम्परागत रूप से निर्धारित किए जाते हैं और उन्हें परम्परागत रूप से पढ़ाया जाता है। इससे विद्यार्थियों में अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं होता। माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास में असफल है। यह केवल कुछ शैक्षिक विषयों को पढ़ना व लिखना ही सिखाती है। जीवन से जुड़े जीवन्त गैर शैक्षिक पक्षों व भावनाओं का शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्यालयों में अंग्रेजी की अनिवार्यता होने के कारण अनेक विद्यार्थी अन्तिम स्कूल परीक्षा भी उत्तीर्ण नहीं कर पाते। अंग्रेजी भाषा विद्यार्थियों व शिक्षा के मध्य दीवार बन कर खड़ी हो जाती है।

शिक्षण विधियाँ बच्चों में स्वतन्त्र चिन्तन विकसित नहीं कर पाती। बच्चे पहल करने की योग्यता प्राप्त नहीं कर पाते। विद्यार्थियों में सहयोग का आनन्द भरने के बजाय, शिक्षा प्रतियोगिता का तनाव उत्पन्न करती है। कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने के कारण शिक्षक व विद्यार्थी के मध्य आत्मिक सम्बन्ध नहीं बन पाते। शिक्षक विद्यार्थी के चरित्र निर्माण व जीवन में अनुशासन स्थापित करने में सफल नहीं हो पाते हैं। शिक्षकों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उनमें निराशा की भावना है। परीक्षा को अधिक महत्त्व देने के कारण शिक्षा में जीवन्तता समाप्त होकर यान्त्रिकता उत्पन्न हो गई है। शिक्षकों की प्रयोगधर्मिता समाप्त हो गई है। महत्त्वपूर्ण बातें गौण हो गई हैं और बेकार की बातों को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली को नष्ट कर 1835 से प्रारम्भ की गई मैकालयी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य भारत राष्ट्र का विकास नहीं था, 1844 के लार्ड हार्डिंग्स के अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवकों को ही सरकारी नौकरी देने के आदेश ने शिक्षा प्रणाली को और विद्रूप कर दिया। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य नौकरी प्राप्त करना हो गया। विश्वविद्यालयों ने अपने स्थापना वर्ष 1857 से ही माध्यमिक शिक्षा पर वर्चस्व स्थापित कर लिया था। देश के स्वतन्त्र होने के बाद शिक्षा का नया लक्ष्य तय किया जाना आवश्यक था।

माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा गया है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर भारत पन्थ निरपेक्ष, प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र बन चुका है अत: शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य उपरोक्त गुणों की रक्षा करने वाले नागरिक तैयार करना होना चाहिए। आयोग का मानना था कि माध्यमिक शिक्षा अपने आप में एक पूर्ण इकाई है, इसे उच्च शिक्षा की तैयारी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी को इतना सक्षम बनाना होना चाहिए कि वह चाहे तो, आत्मविश्वास के साथ, गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सके ।

आयोग का मानना था कि प्राकृतिक संसाधनों के बाहुल्य होने के बावजूद भारत एक गरीब देश है। अत: शिक्षा द्वारा उत्पादकता बढ़ाकर नागरिकों का जीवनस्तर ऊँचा उठाना चाहिए। देश के अधिकांश नागरिकों का अधिकांश समय आजीविका कमाने में ही बीत जाता है। नागरिक सांस्कृतिक गतिविधियों की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं। शिक्षा सांस्कृतिक जागरण को प्रेरित करने वाली हो।

अपने पैरों पर खड़े हों विद्यालय

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा की कमियों ही को दूर कर एक आदर्श माध्यमिक विद्यालय की संकल्पना प्रस्तुत की थी। माध्यमिक विद्यालय को बड़े समुदाय के बीच एक छोटे सुमदाय के रूप में कार्य करना चाहिए। इस छोटे समुदाय की सफलता बड़े समुदाय से स्वस्थ अन्तर्सम्बन्धों पर निर्भर करेगी। शिक्षा विभाग को सम्पूर्ण जिम्मेदारी स्वयं नहीं ओढ़कर विद्यालयों को पर्याप्त स्वतन्त्रता देनी चाहिए। विभागीय नियम दिखा कर प्रधानाध्यापकों को भयभीत नहीं किया जाना चाहिए।

विद्यालय को अपना कलैण्डर व समय विभागचक्र स्थानीय जलवायु व व्यवसाय के अनुरूप स्वयं निर्धारित करना चाहिए ताकि वह समुदाय की गतिविधियों में बाधक नहीं बने। विद्यालयों में अवकाश सार्वजनिक अवकाश के अनुरूप नहीं होकर, वर्ष में दो माह का ग्रीष्मावकाश तथा 10 से 15 दिन के दो मध्यावकाश हों। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा रखने का सुझाव दिया था। उच्च माध्यमिक स्तर पर मातृभाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा पढ़ाने को कहा था। आयोग ने निदेशक माध्यमिक शिक्षा की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड गठित करने का सुझाव दिया था।

सम्मानित हो शिक्षक

आयोग का मानना था कि पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या कितनी भी अच्छी हो, वह मृत ही रहती है जब तक कि सही शिक्षक, सही विधि से उसमें जान नही डाल देता। छोटी कक्षा को पढ़ाने हेतु अधिक योग्य शिक्षक की आवश्यकता होती है, अत: पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक अधिक नहीं तो कम से कम माध्यमिक स्कूल शिक्षक की योग्यता वाले हों। शिक्षक के पद की गरिमा को स्वीकारते हुए सार्वजनिक उच्च पदो पर आसीन लोगों को शिक्षक को विशिष्ट सम्मान देना चाहिए।

माध्यमिक विद्यालय के

प्रधानाध्यापक के पद पर योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने हेतु, आकर्षक वेतन रखने का सुझाव भी दिया था। प्रधानाध्यापक चयन में योग्यता को वरिष्ठता की तुलना में अधिक महत्त्व देने का सुझाव दिया गया। विद्यार्थी हित में शिक्षकों को कार्य करने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। आयोग का मानना था कि प्रारम्भ में कुछ परेशानी हो सकती है मगर आगे चल कर लाभ होगा।

व्यक्तिगत भिन्नता को महत्त्व दें

विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण प्रत्येक शिक्षक का दायित्व होना चाहिए। शिक्षक का प्रयास हो कि विद्यालय की हर गतिविधि चरित्र निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त करने वाली हो। विद्यालय में खेल व अन्य गतिविधियों को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए।

विद्यालय में शिक्षण का उद्देश्य अच्छी विधि से ज्ञान देना नहीं होकर अपेक्षित मूल्यों, मनोवृत्ति व श्रम करने की आदतों का विकास करना होना चाहिए। विद्यार्थी श्रम से लगाव अनुभव करे और ईमानदारी, दक्षता तथा लगन से कार्य पूरा करना सीखे। रटने व लिखने के स्थान पर करने और सीखने का माहौल तैयार किया जावे। बच्चों में सीखने की विधियों व तकनीकों के प्रति उत्सुकता व जिज्ञासा पैदा की जाए।

पाठ्यचर्या विकास अनुसंधान को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। बच्चों को फुर्सत के क्षणों का उपयोग करना सिखाना भी पाठ्यचर्या में होना चाहिए? सही स्थित तो यह है कि विद्यालय का जीवन स्वयं ही पाठ्यचर्या हो। विद्यालय विद्यार्थी के जीवन के प्रत्येक पक्ष को छुए। सन्तुलित व्यक्तित्व विकास में सहायक बने। सभी बच्चे एक से नहीं होते। व्यक्तिगत भिन्नता को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए। व्यक्तिगत भिन्नता के अनुरूप एक से अधिक प्रकार के माध्यमिक विद्यालय खोलने पर विचार किया जाना चाहिए। उच्च माध्यमिक शिक्षा विविधता पूर्ण हो ताकि हर विद्यार्थी को उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल विषय चुनने का अवसर मिल सके।

बच्चे की क्षमता के अनुसार शारीरिक गतिविधियाँ कराई जानी चाहिए। 40 वर्ष की उम्र तक के शिक्षकों को उनके साथ गतिविधियों में सम्मिलित होना चाहिए। बच्चे के स्वास्थ्यकारी भोजन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। विद्यालयों में निर्देशन सेवा को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए।

ऐसे बने पाठ्य पुस्तकें

पाठ्य पुस्तकों के निमार्ण हेतु आयोग ने क्षेत्रीय उच्च स्तरीय समिति गठित करने का सुझाव दिया था। समिति में उच्च न्यायालय का एक जज, राज्य चयन आयोग का एक सदस्य, एक उपकुलपति, एक माध्यमिक विद्यालय का संस्था प्रधान, दो ख्याति प्राप्त शिक्षाविद् तथा माध्यमिक शिक्षा निदेशक सदस्य हो। समिति संविधान की भावना के अनुरूप स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में सक्षम हो। प्रत्येक विषय के लिए एकाधिक पाठ्यपुस्तकें तैयार कराई जाये और विद्यालय को स्वतन्त्रता दी जाये कि वह अपनी इच्छा से पुस्तक का चयन कर सके। आयोग का कहना था कि लेखक शिक्षकों को समझना चाहिए कि विद्यालय का पाठ्यक्रम ही शिक्षा का अन्त नहीं है, शिक्षा जीवन भर चलने वाली क्रिया है। विषय विशेषज्ञों को उनकी पसन्द की विषयवस्तु को पाठ्यक्रम में ठूँसने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। विस्तृत विषय वस्तु व सूचनाओं के अम्बार में अन्तर किया जाना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों में जल्दी जल्दी बदलाव नहीं किए जाने चाहिए।

सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान को अलग विषयों जैसे इतिहास, अर्थशास्त्र, भौतिकी या जीवविज्ञान आदि के समूह के रूप में नहीं लिख कर बच्चे के परिवार, समाज, राज्य व देश को आधार बना समेकित रूप से लिखा जाना चाहिए। विषय बच्चे को समाज व्यवस्था को सही तरह से समझने में मदद करने वाले हों। आयोग ने विद्यालयों में पुस्तकालयों की स्थापना व क्षेत्रीय भाषाओं में अधिकाधिक विविध साहित्य तैयार कराने पर जोर दिया था।

शिक्षण ऐसा हो कि बच्चे स्पष्ट चिन्तन को अभिव्यक्त कर सकें। विद्यालयों में विविध प्रकार की सह शैक्षिक गतिविधियों को संचालित करने तथा प्रत्येक शिक्षक द्वारा उनमें भागीदारी निभाने की अपेक्षा की गई। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखने की जिम्मेदारी स्कूल की मानते हुए स्वास्थ्य शिक्षा पर जोर दिया गया।

माध्यमिक शिक्षा के अन्त में एक ही सार्वजनिक परीक्षा आयोजित करने तथा व्यक्तिनिष्ठता को कम करने हेतु वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया गया। अंकों के स्थान पर ग्रेड देने का सुझाव भी माध्यमिक शिक्षा आयोग ने दिया था।

सुझाव क्रियान्वित नहीं हुए

माध्यमिक शिक्षा आयोग के पूर्व भी कई आयोगों ने कई अच्छे सुझाव दिए थे। आयोग को मलाल था कि उन सुझावों को लागू नहीं किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट आने के 60 वर्ष बाद आज जब हम इसकी चर्चा कर रहे हैं तो इतिहास एक बार फिर अपने को दोहरा रहा है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न शिक्षा नीतियों को लागू करने का प्रचार प्रसार किया गया मगर धरातल पर कुछ खास नहीं हुआ। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अधिकांश सुझाव आज भी प्रासंगिक हैं। उन्हें सच्चे मन से लागू किया जाये तो माध्यमिक शिक्षा में वांछित सुधार सम्भव हैं। ❑

(विज्ञान विषयक लेखक एवं बाल उपन्यासकार)

माध्यमिक शिक्षा में भटकाव ही भटकाव

❑ बजरंगी सिंह

भ्रष्टाचार कहीं भी हो, विनाशकारी है पर जब वह शिक्षा के क्षेत्र में फैले तो महाविनाशकारी है क्योंकि तब वह फल और फूल ही नहीं पौधे की जड़ को ही समाप्त कर देता है। इस संबंध में हमारे राजनेताओं को तो शायद सोचने की फुर्सत न हो। अच्छा होगा कि इस संबंध में छात्र और अध्यापक सोचें। बदलाव में हमेशा छात्रों एवं अध्यापकों की बड़ी भूमिका रही है किन्तु दुर्भाग्य रहा कि अध्यापक, वेतन और सुविधाओं की बढ़ोतरी को लेकर व्यस्त हो गया तो छात्र, भविष्य और कॅरियर में फँस गया। नेता, आजाद हो कमाई और भ्रष्टाचार में इस तरह लीन हो गया कि वह देश-समाज को भूल ही गया। परिणाम हुआ कि भ्रष्ट और बेईमान नौकरशाहों ने मनमानी कर देश एवं समाज की तस्वीर इतनी धुंधली कर दी कि उसका असली रूप बदरंग हो गया है। समय रहते यदि इस पर गौर नहीं किया गया तो माध्यमिक ही नहीं सम्पूर्ण शिक्षा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जायेगी।

यह सर्वविदित है कि माध्यमिक शिक्षा, शिक्षा की रीढ़ है। जैसे शरीर में यदि रीढ़ कमजोर, रोगग्रस्त या अव्यवस्थित हो जाय तो पूरा शरीर बेकार हो जाता है। ठीक उसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा यदि बीमार या कमजोर हो गई तो पूरा शैक्षणिक तंत्र अस्त-व्यस्त हो जायेगा। आज वर्तमान में हमारी शिक्षा खासकर माध्यमिक शिक्षा की स्थिति लगभग ऐसी ही बन चुकी है। प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद छात्र माध्यमिक शिक्षा में प्रवेश करता है। यहीं से उसे अपनी जीवनधारा निर्धारित करने और आगे बढ़ने का रास्ता खुलता है। विड़म्बना यह रही कि माध्यमिक शिक्षकों शुरू से उपेक्षा ही नहीं सरकारी उपेक्षा की भी शिकार रही। परिणाम रहा कि माध्यमिक शिक्षा का समुचित और सही विकास नहीं हो सका। उल्टे दुर्गति का शिकार बन गई। हम यदि यहाँ गौर करें तो पता चलता है कि माध्यमिक शिक्षा आज निजी हाथों में पहुँच चुकी है। वह दिन दूर नहीं जब पूरी तौर पर माध्यमिक शिक्षा व्यक्तिगत प्रबंधाधिकरणों के हाथ में सौंप दी जायेगी। अकेले उत्तर प्रदेश में 80 प्रतिशत स्कूल निजी प्रबंधाधिकरणों के हैं। बाकी 15 प्रतिशत सरकारी सहायता प्राप्त तो केवल पाँच प्रतिशत स्कूल ही सरकारी हैं। कमोबेश यही स्थिति दूसरे राज्यों में भी है या फिर होने वाली है।

दुर्भाग्य रहा कि शुरू से माध्यमिक शिक्षा को सरकारी उपेक्षा मिलती आ रही है। सरकार न तो शिक्षण संस्थाओं के खोलने और निर्माण करने में रुचि दिखा सकी और न ही अच्छे योग्य शिक्षकों को इस ओर आकर्षित कर सकी। यही नहीं प्रशिक्षण संस्थाओं का भी अभाव बना हुआ है। जो प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं भी उनकी स्थिति बहुत ही निराशाजनक है। निजी प्रशिक्षण संस्थाओं का इस क्षेत्र में जरूर बेतहाशा वृद्धि हुई किन्तु वह कमाई का साधन बनकर रह गई। गुणवत्ता के मामले में इनकी उपयोगिता लगभग शून्य है। ये प्रमाणपत्र जरूर बाँट रही हैं किन्तु अच्छे और योग्य शिक्षक बिल्कुल ही नहीं दे पायी हैं।

इन स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षकों की क्या स्थिति है वह आज किसी से छुपा नहीं है। वे एक बँधुआ मजदूर की जिंदगी जीने के लिए विवश हैं। पूरी अर्हता रखने के बाद भी उन्हें इतना वेतन नहीं दिया जाता कि वे अपने परिवार का सही भरण-पोषण कर सकें और अपने बच्चों को उचित शिक्षा दिला सकें । दूसरी ओर इन स्कूलों में पढ़ाई करने वाले छात्र-छात्राओं का भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में, परीक्षा उत्तीर्ण कराने और दूसरे बहानों से बराबर शोषण किया जा रहा है। यहाँ से उत्तीर्ण हो कर निकलने वाले छात्र-छात्राओं को यह भी पता नहीं होता कि उनका प्रवेश अगली कक्षाओं में हो भी पायेगा या नहीं। अच्छे कॉलेजों या फिर विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने का तो कोई सवाल ही नहीं है।

आज माध्यमिक शिक्षा और परीक्षा दोनों अराजकता और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ चुकी हैं। अभी हाल में यूपी बोर्ड की हाईस्कूल तथा इंटरमीडिएट की परीक्षाओं में जो दृश्य बिहार तथा उत्तर प्रदेश में देखने को मिला है उससे पूरा देश अचंभित है। इससे भी खराब हाल यहाँ के अधिकांश माध्यमिक स्कूलों में पढ़ाई की है। यहाँ न अध्यापक हैं और यदि कहीं हैं भी तो वे अध्यापक की अर्हता पूर्ण नहीं करते हैं जो करते हैं उन्हें वेतन के नाम पर छला जा रहा है। यही नहीं परीक्षा उत्तीर्ण करने और कराने तथा परीक्षा में अच्छे अंक पाने के लिए केवल भारी धन वसूली ही नहीं बल्कि परीक्षा केन्द्र पर कब्जा जमाने आये लोगों को तितर-बितर करने के लिए पुलिस को लाठी भाँजना ही नहीं पड़ता कभी-कभी गोलियाँ भी चलानी पड़ती हैं। मजे की बात तो यह है कि अब छात्र-अभिभावक नकल कराने की माँग भी करने लगे हैं। बात यहीं नहीं खत्म हो जाती है बल्कि राजनेता नकल करने की छूट के नाम पर चुनाव भी जीतने लगे हैं। परीक्षा में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण कराने और अच्छे अंक दिलाने के लिए अलग-अलग रेट तय है। यह बीमारी अब असाध्य होती जा रही है। कुछ राज्यों में ही नहीं अपितु सभी राज्यों में नकल और परीक्षा उत्तीर्ण कराने के ठेके भी लिए जाने लगे हैं। शिक्षा विभाग के अधिकारी ही नहीं प्रशासनिक अधिकारी और पुलिस भी इसमें शामिल हो चुकी है। आज यह एक 'चोखे धंधे' का रूप ले चुका है। बड़े-बड़े कोचिंग संस्थान एवं ट्यूशन केन्द्र कमाई का खासा माध्यम बन चुके हैं। इसने आज एक बड़ा व्यावसायिक रूप ले लिया है। केवल इसलिए क्योंकि स्कूल में पढ़ाई लगभग ठप्प हो चुकी है।

इधर माध्यमिक स्कूलों में जो अध्यापक बनकर आ रहे हैं या आ चुके हैं उनका पढ़ाई के प्रति न रुझान है और न ही समर्पण हैं, यदि थोड़ा पीछे जाकर देखें तो इन शिक्षकों के चयन और तैनाती की कहानी अलग ही दास्ता बयाँ कर रही है। जगजाहिर है शिक्षकों के चयन से लेकर तैनाती तक में भ्रष्टाचार का बोलबाला। यही वजह है कि जो शिक्षक बनने के लायक हैं उनका चयन नहीं हो पाता है। जो शिक्षक बनने में कोई दिलचस्पी नहीं रखते वे मजबूरी में सुविधाशुल्क के बल पर अध्यापक बनते जा रहे हैं। एक तथ्य यह भी सामने आ रहा है कि कई लोग ऐसे भी शिक्षक बन गए हैं जो वाकई ज्ञान रखते हैं किन्तु उनका पढ़ाई-लिखाई के प्रति कोई समर्पण या रुचि नहीं है। बस कमाई के लिए अध्यापकी कर रहे हैं। ये वे लोग है जो अपने मन पसंद क्षेत्र में असफल हो चुके हैं। आखिर ऐसे में माध्यमिक शिक्षा की गाड़ी पटरी पर कैसे आयेगी? दुर्भाग्य रहा कि शुरू से माध्यमिक शिक्षा को सरकारी उपेक्षा मिलती आ रही है। सरकार न तो शिक्षण संस्थाओं के खोलने और निर्माण करने में रुचि दिखा सकी और न ही अच्छे योग्य शिक्षकों को इस ओर आकर्षित कर सकी। यही नहीं प्रशिक्षण संस्थाओं का भी अभाव बना हुआ है। जो प्रशिक्षण संस्थायें हैं भी उनकी स्थिति बहुत ही निराशाजनक है। निजी प्रशिक्षण संस्थाओं की इस क्षेत्र में जरूर बेतहाशा वृद्धि हुई किन्तु वह कमाई का साधन बनकर रह गई। गुणवत्ता के मामले में इनकी उपयोगिता लगभग शून्य है। ये प्रमाणपत्र जरूर बाँट रही हैं किन्तु अच्छे और योग्य शिक्षक बिल्कुल ही नहीं दे पायी हैं।

आइये एक नजर हम सेकेंडरी स्कूलों पर डालें। भारत में माध्यमिक शिक्षा दो प्रकार की है। पहली कक्षा 9 तथा 10 तथा दूसरी कक्षा 11 और 12/1970 से पहले कक्षा 11 व 12 को कॉलेज स्तर की शिक्षा कहा जाता था। बाद में इन्हें उन हाईस्कूलों के सुपुर्द कर दिया गया जो छात्रों को मेट्रिक की फाइनल कक्षा 10 के लिए तैयार करते थे। कुछ राज्यों में यही कक्षायें इंटरमीडिएट कक्षायें कही जाती हैं। अब इस असुविधा से बचा जा सकता है, जब सभी राज्यों में हाईस्कूल की शिक्षा 12 वर्षों की हो गयी है। आलोचकों का कहना है कि कुछ प्राधिकरण इस व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं। सही बात तो यह है कि किसी भी बच्चे को स्कूल शिक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता है।

हमारे देश में कुल मिलाकर लाखों की संख्या में स्कूल हैं और 40 हजार उच्च माध्यमिक स्कूलों में 370 लाख छात्र पढ़ते हैं। यह संख्या यूरोप के अनेक देशों की मिली-जुली जनसंख्या से अधिक है। इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि इस स्तर पर पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की संख्या 62 प्रतिशत है। इससे हमारे शिक्षा नियोजकों की आँखें खुल जानी चाहिए। आज भी बहुत से बच्चे इस स्तर तक पहुँच नहीं पा रहे हैं। जरूरत इस बात की है कि हाईस्कूल तक शिक्षा में व्यावसायिक पाठ्यक्रम सम्मिलित हो। माध्यमिक शिक्षा का छात्र 12 वर्षों की शिक्षा पूरी करके सक्षम बनकर निकलेगा और कई क्षेत्रों में उनमें व्यावहारिक कुशलता होगी। ❑

(स्वतन्त्र लेखक)

पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक शिक्षा

❑ प्रो. मधुरमोहन रंगा

जब भी किसी राष्ट्र, समाज व व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर विचार मंथन करते हैं, तो सम्पूर्ण चर्चा शिक्षा, शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा के उद्देश्य, राज्य व केन्द्र द्वारा घोषित नीतियों आदि पर केन्द्रित होती हैं, और यह होना स्वभाविक भी हैं, क्योंकि शिक्षा वह माध्यम हैं जिसके द्वारा समग्र विकास की अवधारणा पोषित एवं पल्लवित होती हैं। भारतीय संस्कृति के विरासत में शिक्षा को चिंतन, मनंन एवं मानसिक परिष्करण का उपकरण माना गया हैं। विश्व कल्याण केन्द्रित शिक्षण व्यवस्था में साध्य की शुद्धता के साथ-साथ साधन की शुचिता पर भी आवश्यक ध्यान दिया जाता था। इस हेतु तीन प्रमुख साधन 'श्रवण, मनन एवं निविध्यासन' थे, जिनका अन्तिम लक्ष्य ज्ञान की अनुभूति कर स्वांगीकरण रहा था। अत: शिक्षा के द्वारा न्यायसंगत समाज का निर्माण संभव हैं, क्योंकि इसके द्वारा ही प्रत्येक क्षेत्र में कौशल एवं दक्षता प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा, जन के लिए पूरी तरह से शासन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान करने के साथ लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करती हैं। अत: शिक्षा के राष्ट्रीय विकास में योगदान के महत्व को स्वीकार करते हुए योजनाओं में शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया। पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के उद्देश्य, विस्तार, विकास, रोजगारोन्मुखी शिक्षा, स्वावलंबन व चरित्र निर्माण आदि विषयों पर चर्चा होना तर्क संगत है। अत: केन्द्र स्तर पर योजनाओं का निर्माण, उनकी क्रियान्वयन के प्रयास व वित्त पोषण का प्रावधान आदि विषयों पर विस्तार से विचार मंथन व मनन करने से सार्थक पाथेय सामने आता है।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारंभ सन् 1951 में हुआ। यद्यपि योजनाओं में विभिन्न क्षेत्रों के विकास का वर्णन आता है, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग योजना आयोग द्वारा विकसित, क्रियान्वित व इसकी देख-रेख में चलने वाली योजनाओं पर आधारित होता है। प्रस्तुत आलेख में सिर्फ माध्यमिक शिक्षा के संदर्भ में योजनाओं में रखे गए उद्देश्यों के साथ-साथ योजनाओं के क्रियान्वयन संबंधी पक्ष पर ही ध्यान डाला गया है। स्वाधीनता के पश्चात् विविध पंचवर्षीय योजनाओं, शिक्षा आयोगों एवं समितियों के माध्यम से शिक्षा तंत्र में व्यापक सुधार हो रहे हैं। इनमें विशेषकर सकल नामांकन दर, व

समानता (equity) -जब हम सामाजिक पहुँच में समानता की चर्चा करते हैं तब हमें कई श्रेणियों का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि सभी श्रेणी समूहों में समानता नहीं होती अत: माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समानता के आधार पर सभी वर्गों की पहुँच सुनिश्चित करना, सामाजिक व आर्थिक वास्तविकता (social and economic realities) को ध्यान में रखना एवं शहरीकरण के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, समानता के आधार पर सभी वर्गों/ समूह की शैक्षिक पहुँच को केन्द्र बिन्दु मानकर विद्यार्थियों का नामांकन बढ़ाना आदि प्रयास अपेक्षित है। गुणवत्ता (quality)- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (national curriculum frame work, 2005) के मानकों की अपेक्षानुसार पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन करना, आवश्यक ढ़ाँचागत सुविधाएं उपलब्ध कराना, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को आधुनिक व रोचक बनाना, नैतिक मूल्यों का पाठ्यक्रम में समावेश करना इत्यादि।

बालिका नामांकन दर में वृद्धि, शिक्षा के आधारभूत ढ़ाँचे व नियामक तंत्र में सुधार आदि पहलुओं पर ध्यान दिया गया। अब बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) के माध्यम से शिक्षा व कौशल विकास द्वारा मानव पूँजी निर्माण व विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा हैं। इन सभी कार्यक्रमों का एक ही केन्द्रीय मत है कि किसी राष्ट्र के आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा ही एक सशक्त माध्यम हैं। निश्चित ही प्रांसगिक ज्ञान व कौशल से युक्त शिक्षित समाज इक्कीसवीं सदी में देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास को दिशा प्रदान करेगा। शिक्षा सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकता, समग्र विकास, विश्वबन्धुत्व, जीवन के शाश्वत मूल्यों का सम्प्रेषण, समर्पण, सहयोग व समन्वय की भावना को उर्जा प्रदान करने के लिए एकीकृत शक्ति के रूप में मार्गदर्शन प्रदान करती है। शिक्षा प्रत्येक पंचवर्षीय योजना का केन्द्रीय अवयव रहा है, अत: यह जानना तर्कसंगत होगा कि स्वाधीनता के पश्चात् लोकतंत्र की इस यात्रा में शिक्षा क्षेत्र में हम कहाँ तक पहुँचे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) से ही शिक्षा को कौशल एवं दक्षता वृद्धिकारक मानते हुए नीतिगत विकास हेतु महत्वपूर्ण निवेश माना गया। इस योजना में शिक्षा तंत्र को इतना प्रभावी बनाने की अपेक्षा की गई जो राष्ट्र योजना हेतु अपेक्षित दर पर उपयुक्त गुणवत्ता के साथ विभिन्न क्षेत्रों के विशिष्ट कार्यों के लिए मानव श्रम उपलब्ध करा पाए। शैक्षिक कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जो अधिकारों से पहले जिम्मेदारियों को जगह देने का भाव लोगों में विकसित करने और आत्मसम्मान के दृष्टिकोण के साथ वैध सीमा में अर्जनशील वृत्ति पर बल देने में मदद करे जो न्यायसंगत समाज के निर्माण एवं राष्ट्र योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक हैं। शिक्षा प्रणाली राष्ट्र की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाली होनी चाहिए। निश्चित ही माध्यमिक शिक्षा इन उद्देश्यों की पूर्ति का उपकरण हो सकती है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में माध्यमिक शिक्षा पर 22 करोड़ रूपये के व्यय का प्रावधान किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961) में यह 51 करोड़ रुपये था। इन दोनों पंचवर्षीय परियोजनाओं में प्राथमिक शिक्षा के लिए सर्वव्यापीकरण की तरफ तुलनात्मक रूप से अधिक सफलता प्राप्त हुई जहाँ 6 से 11 वर्ष के शिक्षार्थियों की नामांकन दर 42 प्रतिशत (1950-1951) से बढ़कर 62.7 प्रतिशत (1960-1961) हो गई है। माध्यमिक स्तर पर यह वृद्धि अपेक्षाकृत कम रही। इस योजना काल (1951 से 1961) में उच्च माध्यमिक स्तर तक के विद्यालयों की संख्या 7288 से बढ़कर 12125 हुई।

इस समय शिक्षा क्षेत्र में सबसे बड़ी चिन्ता विद्यार्थियों का छोटी कक्षाओं में ही अधिक 'ड्राप-आउट' था। माध्यमिक स्तर तक कुल नामांकन का केवल 23 प्रतिशत तक ही पहुँच पा रहा था। बालिका शिक्षा के क्षेत्र में विषमता बहुत ज्यादा होने के साथ-साथ एक बड़ी बाधा महिला शिक्षकों की कमी थी। इस परिदृश्य में माध्यमिक शिक्षा आयोग की अनुशंषा के आधार पर माध्यमिक शिक्षा तंत्र में आमूलचूल परिवर्तन किए गए, जिनमें मुख्यत: प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी पूर्ति, कला शिक्षा, कौशल-विकास, हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षक, बालिकाओं का विद्यालय में ठहराव सुनिश्चित करने जैसे कई कदम शामिल थे। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-1974) में सन् 1973-1974 तक माध्यमिक स्तर पर 70 लाख बालकों एवं 26.9 लाख बालिकाओं के नामांकन का लक्ष्य रखा गया जो, कि उनके आयु वर्ग का 34.3 एवं 13.7 प्रतिशत ही था, निश्चित ही अधिकाँश बच्चे अभी भी माध्यमिक शिक्षा की पहुँच से दूर रहे। सन् 1984-1985 तक पंजीकृत शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़कर 755,000 तक पहुँच गई थी एवं इनमें 132 करोड़ शिक्षार्थी प्रवेशित थे। छठवीं पंचवर्षीय योजना (1980-1985) में शिक्षा को व्यावहारिक बनाने, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाने के प्रयास किए गए जिसका उद्देश्य शिक्षा, रोजगार एवं विकास के बीच समन्वय स्थापित कर लाभदायक बनाना था। दुर्भाग्यवश इस योजनावधि में कुछ राज्यों में बालिकाओं के माध्यमिक स्तर पर पंजीकरण में कमी आई। स्थिति यह थी कि 9 राज्यों, असम, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, जम्मू एवं काश्मीर, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल के 80 प्रतिशत बच्चों का स्कूल में प्रवेश ही नहीं हुआ। इसी दौरान 20 राज्यों एवं 9 केन्द्र शासित प्रदेशों में उन्नत शिक्षा पद्धति अपना कर शिक्षा में सुधार एवं शिक्षा को मूल्य उन्मुखी बनाने के प्रयास किए गए।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990) में विज्ञान व गणित की शिक्षा पर विशेष बल देकर उसका सर्वसामान्यीकरण करने का लक्ष्य रखा गया। सामाजोपयोगी उत्पादक कार्यों, नैतिक शिक्षा को अधिक महत्व देना भी लक्षित किया गया था। इस योजना में शिक्षकों को सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोगों में प्रशिक्षित करने में ''राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण'' परिषद् की भूमिका में वृद्धि करने की बात कही गई। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में लैंगिक असमानताएं एवं ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में शिक्षा स्तर में पर्याप्त निवेश के बाद भी असमानताएं रहने पर चिंता व्यक्त की गई। इस योजना में पाठ्यक्रम में संशोधन एवं बालिकाओं तथा कमजोर वर्गों के लिए छात्रवृत्ति का प्रावधान किया गया। इसी योजना में अनिवार्य शिक्षा देने की बात कही गई। योजना में शिक्षकों की सेवा पूर्व एवं सेवारत होने के दौरान प्रशिक्षण को पुनर्गठित करने की बात कही गई है। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) में 1.02 लाख माध्यमिक एवं 0.50 लाख उच्च माध्यमिक स्कूलों में पंजीकरण क्रमश: 24.3 मिलियन एवं 12.7 मिलियन रहा था। सकल नामांकन

अनुपात (GER), माध्यमिक शिक्षा में 51.63 प्रतिशत और उच्च माध्यमिक शिक्षा में 27.82 प्रतिशत रहा। माध्यमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने वालों का प्रतिशत 62 रहा। लेकिन निरन्तर प्रयास के बाद भी राज्य एवं अन्तरराज्य विभिन्नताएं बेहद चैकाने वाली थी। बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में जीईआर राष्ट्रीय औसत से भी कम रहा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार सर्व शिक्षा अभियान के सफलतापूर्वक लागू होने से बड़ी संख्या में विद्यार्थी उच्च माध्यमिक कक्षाओं में उत्तीर्ण हो रहे हैं, तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए अत्यधिक माँग उत्पन्न कर रहे हैं, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सन् 2007 में ग्यारहवीं योजना के अन्तर्गत भारत सरकार ने केन्द्र द्वारा पोषित राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रारंभ किया। अभियान के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा का विस्तार कर उसके स्तर में सुधार लाना, प्रत्येक स्थान पर पाँच किलोमीटर व्यास के क्षेत्र में माध्यमिक विद्यालय की उपलब्धता सुनिश्चित कर माध्यमिक शिक्षा को भारत के प्रत्येक क्षेत्र में पहुँचाना। माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (universalisation of secondary education) का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए केन्द्र सरकार की यह उत्तम पहल रही। योजना आयोग के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में पहुँच (access) 90 प्रतिशत व उच्च माध्यमिक में 95 प्रतिशत, वर्ष 2012 में बढ़ी है। वर्ष 2017 तक सभी विद्यार्थियों को माध्यमिक शिक्षा की सुलभता सुनिश्चित करना यानी सकल नामांकन अनुपात 100 प्रतिशत (gross enrollment ratio) करना समाज के आर्थिक रूप से कमजोर समूह के विशेष संदर्भ में, इसी प्रकार शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की छात्राओं एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे असमर्थ विद्यार्थियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों को माध्यमिक शिक्षा सुगमतापूर्वक उपलब्ध कराना। यह भी सुनिश्चित करना कि सभी माध्यमिक विद्यालयों में भौतिक संसाधन निर्धारित मानकों के साथ हों, सभी संस्थाओं में शिक्षक कर्मचारियों की संख्या मापदण्ड के अनुसार हो, यह भी सुनिश्चित् करना की कोई भी विद्यार्थी, सामाजिक-आर्थिक असमर्थता या अन्य रुकावटों की वजह से गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा से वंचित न रहे, यह भी प्रयास करना कि विद्यार्थियों की बौद्धिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मेधा उत्कृष्ट हो।

आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी का है, इसमें सूचनाओं का संग्रहण, सम्प्रेषण, विश्लेषण व वितरण त्वरित गति से होता है, इसलिए भारत सरकार द्वारा कई योजनाएं संचालित की जा रही है। राज्य सरकारों को माध्यमिक विद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा एवं कम्प्यूटर की मदद से शिक्षा देने वाले विद्यालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी प्रकोष्ठ का गठन करना हैं। राज्य सरकारें तथा गैर सरकारी संस्थाओं को असमर्थ विद्यार्थियों को मुख्य धारा में लाने के लिए एकीकृत शिक्षा का प्रयास करना चाहिए। ग्रामीण छात्राओं के लिए छात्रावास की सुविधा उपलब्ध कराना, विद्यार्थियों में विज्ञान व पर्यावरण जागरूकता के लिए अभिरुचि बढ़े, इसके लिए विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा को प्रोत्साहन व अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान ओलम्पियाड़ को सहायता देना शामिल है। योग व जनसंख्या शिक्षा भी विद्यार्थियों को देने का प्रावधान है। उपरोक्त सभी योजनाएं केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित व संचालित हैं, आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थियों के लिए रोजगार या अंशकालीन रोजगार का प्रावधान है ताकि उन्हें आय प्राप्त हो सके।

वित्त पोषण के संबंध में ग्यारहवीं योजना के दौरान उत्तर पूर्व राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए प्रावधानों को लागू करने के कुल खर्चे का 75 प्रतिशत केन्द्र सरकार वहन करेगी। जबकि उत्तरपूर्वी राज्यों के लिए केन्द्र सरकार 90 प्रतिशत खर्च का वहन करेगी। बारहवीं योजना के लिए केन्द्र तथा राज्यों के बीच साझा खर्च 50:50 में परिवर्तित किया जाएगा, जबकि उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए केन्द्र व इन राज्यों में 90:10 के अनुपात में होगा। 12वीं योजना में विद्यालय के औसत वर्ष (Mean Year of Schooling), 07 वर्ष प्राप्त करने का लक्ष्य उल्लेखित है। इसका आकलन 15 वर्ष की आयु के समूह के विद्यार्थियों के लिए करते हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता

11.79 प्रतिशत की दर से जबकि पुरुषों की 6.88 की दर से बढ़ी है। साथ ही भारत में निरक्षरों की संख्या में कमी आई हैं। 12 वीं योजना में महिला साक्षरता 75 प्रतिशत व पुरुषों की 85 प्रतिशत तक ले जाने का लक्ष्य है। माध्यमिक शिक्षा का सकल नामांकन अनुपात 90 प्रतिशत तक ले जाना, ड्रॉप-आउट को 25 प्रतिशत से भी कम करना है। माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लिए राष्ट्रीय मानक निर्धारण करना ब्लॉक स्तर पर 6000 उच्च गुणवत्तायुक्त आदर्श विद्यालयों की स्थापना, 3500 विद्यालय, राज्यों की साझेदारी से व 2500 आदर्श विद्यालय सार्वजनिक-निजी भागीदारी के आधार पर आरंभ करना। यह भी सुनिश्चित करना की सभी विद्यालयों में शत-प्रतिशत प्रशिक्षित शिक्षक हों। 11200 उच्च माध्यमिक विद्यालयों को क्रमोन्नत करना, छात्रवृत्ति सुविधा बढ़ाना व आधारभूत ढ़ाँचे का आधुनिकीकरण करना, ये सभी 12वीं योजना के मुख्य लक्ष्य हैं।

उपरोक्त प्रावधानों को लागू करने, उनके सफल संचालन एवं नियोजन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन या अन्य संस्थाएं कार्यरत हैं। राज्य स्तर पर राजकीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, राजकीय शैक्षिक प्रबंधन और प्रशिक्षण संस्थाएं शामिल हैं। कई राज्य सरकारों ने राज्य स्तरीय परिषदों का निर्माण किया है। राजस्थान सरकार ने 3 सितम्बर, 2009 को राजस्थान राज्य सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत राजस्थान काऊंसिल ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन का गठन किया है। यह परिषद् राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, बालिका छात्रावास योजना व 6000 आदर्श विद्यालयों का निर्माण आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए करेगी।

माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के साथ-साथ शिक्षा नीति के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा घोषित उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निम्न कार्य योजना एवं प्राथमिकताएं आवश्यक है, जैसे पहुँच (access) - गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के लिए एक समान पहुँच प्रदान करना। इसके लिए माध्यमिक विद्यालयों का विस्तार, नए विद्यालयों को खोलना, उच्च माध्यमिक विद्यालयों को क्रमोन्नत करना, सूक्ष्म नियोजन के आधार पर सभी आवश्यक ढ़ाँचागत सुविधाएँ उपलब्ध कराना, शिक्षकों का पदस्थापन, स्कूल मैपिंग प्रक्रिया द्वारा अब तक अछूत रहे क्षेत्रों में नए माध्यमिक विद्यालय प्रारंभ करना सभी शिक्षण संस्थाओं में वर्षा जल संचय प्रणाली अनिवार्य रूप से लागू करना, मौजूदा विद्यालयों की इमारतों को नि:शक्त जन के लिए मित्रवत बनाना, नए विद्यालयों को सार्वजनिक-निजी भागीदारी के आधार पर स्थापित करना, बहुआयामी रणनीति के तहत विद्यार्थियों की विद्यालयों में उपस्थिति सुनिश्चित करना, कमजोर श्रेणियों के विद्यार्थियों की समस्याओं का एक यथार्थदवादी आकलन (realiastic assessment) करना, शिक्षण-अधिगम प्रणाली को रोचक बनाना, मुक्त व दूरस्थ शिक्षा को प्रोत्साहन देना, उपरोक्त सभी उपायों के आधार पर विद्यार्थियों की पहुँच विद्यालय में बढ़ेगी।**समानता** (equity) -जब हम सामाजिक पहुँच में समानता की चर्चा करते हैं तब हमें कई श्रेणियों का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि सभी श्रेणी समूहों में समानता नहीं होती अत: माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समानता के आधार पर सभी वर्गों की पहुँच सुनिश्चित करना, सामाजिक व आर्थिक वास्तविकता (social and economic realities) को ध्यान में रखना एवं शहरीकरण के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, समानता के आधार पर सभी वर्गों/ समूह की शैक्षिक पहुँच को केन्द्र बिन्दु मानकर विद्यार्थियों का नामांकन बढ़ाना आदि प्रयास अपेक्षित है। **गुणवत्ता** (quality)- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (national curriculum frame work, 2005) के मानकों की अपेक्षानुसार पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन करना, आवश्यक ढ़ाँचागत सुविधाएं उपलब्ध कराना, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को आधुनिक व रोचक बनाना, नैतिक मूल्यों का पाठ्यक्रम में समावेश करना इत्यादि। **प्रशासन** (governance) -सम्पूर्ण परियोजना के सफल संचालन व प्रबंधन को दायित्वपूर्ण करना, विद्यालयों को समय-समय पर वित्तीय सहायता प्रदान करना, प्रबंधन व्यवस्था कौशलयुक्त बनाना, साथ ही प्रत्येक प्रक्रिया को पारदर्शी व जवाबदेही बनाना, नियुक्तियों व तबादलों की तर्कसंगत निति बनाना, शिक्षक-प्रशिक्षण व्यवस्था प्रभावी बनाना, शिक्षा प्रशासन के आधुनिकीकरण व विकेन्द्रीकरण के प्रयास, सन्दर्भ संस्थाओं से सतत् सम्पर्क व अभिभावक-शिक्षक अनवरत संवाद आदि व्यवस्थाओं को सक्षम बनाना।

सर्व शिक्षा अभियान प्राथमिक शिक्षा के प्रोत्साहन पर आधारित है व संविधान के अनुसार अनिवार्य (mandatory) है, जबकि राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (एकीकृत) के सर्वव्यापीकरण की अनिवार्यता नहीं है। क्या संविधान द्वारा अनिवार्य होने पर ही कार्यक्रम सफलता की सीढ़ी पर चढ़ेगा ? यह विचारणीय बिन्दु है। नैतिकता व आवश्यकतानुसार इस अभियान को भी सम्पूर्णता की ओर ले जाना होगा। अत: हम 12वीं योजना के अंत व 2020 तक अन्तरराष्ट्रीय प्रतिधारण को प्राप्त करके माध्यमिक स्तर की शिक्षा में अंतरराष्ट्रीय पहुँच (international access) प्रदान करने का संकल्प करें, इसकी गुणवत्ता के लिए प्राच्य विद्या का भी पाठ्यक्रमों में समावेश करे तभी राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अभिसरण के साथ सभी निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकेगा।❑

(प्रोफेसर-पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़))

Secondary Education: Adaptability or Ethics

❑ Dr. A. K. Gupta

Education is subdivided in to different segments to focus and address needs of a particular section of the society which is more relevant to growth of a person. It may commence from preprimary education formally to move ahead to primary before secondary or senior secondary to complete school education. Education seems to be a simple phenomenon but at the same time it is very complex in nature. In education one has to focus needs of the target group based on age group e.g. pre primary, primary, middle, secondary or senior secondary before talking about college education. Some sort of employment can begin at this stage therefore one has to look at it in different way.

For this type of education one has to focus on a group of 14-18 years children. The planners have to think about physical changes, emotional changes, social and family expectations/ responsibilities from either end. The time in general remains tough since in most of the cases expectations are risen with financial crunch. At this stage dreams of childhood are at the verge of conversion into reality. Development of general studies are required to be focused in the field of interest. In the process of churning one may be drifted towards state of confusion to dwindle between idealism and hard life realities or to move for better adaptability to adjust in any condition.

The time is just right to have synthesis on personal beliefs, cultural concepts which at times may lead to emotional turmoil. A small interactive group may find proper solution to such problems. An educationist should consider following points e.g. formal or informal education, building up of a different personality which is expected to be dedicated to the nation and mankind, adult education or continuing education, hardening of philosophical concepts, understanding of routine financial concepts etc.

The time is just right to have synthesis on personal beliefs, cultural concepts which at times may lead to emotional turmoil. A small interactive group may find proper solution to such problems. An educationist should consider following points e.g. formal or informal education, building up of a different personality which is expected to be dedicated to the nation and mankind, adult education or continuing education, hardening of philosophical concepts, understanding of routine financial concepts etc.

sider following points e.g. formal or informal education, building up of a different personality which is expected to be dedicated to the nation and mankind, adult education or continuing education, hardening of philosophical concepts, understanding of routine financial concepts etc.

At this stage of education one should focus on group activities for supporting social activities e.g. Shakha, Scout, Rover, NCC, NSS etc should be encouraged. Bond of togetherness and responding for a common cause should be addressed. General problems e.g. environmental issues, disaster management or likewise should be the target. Some advanced knowledge in a particular field and building up of a strong personality with deep foundation of moral/ ethics is vital.

Contents of studies should be carefully selected so as to keep balance between segments around ambient atmosphere. At least one language for communications is essential at common level. This needs to be well supported with proper background of basic mathematics. At any stage History as taught makes a strong impression on tender minds, therefore selection of contents is vitally important. History is like learning lessons from our past to move ahead in right direction. Other subjects e.g. Social Studies, General Sciences, Crafts or to do itself approach is very important for doing the things one's own or self. At this stage weightage to extracurricular activities should be appropriate.

Extra expectations some time may lead to frustration among the youth. Therefore burden of extra efforts may at times bring unnecessary taxing of the budding ideal citizen. It is important to note that if competition gets tougher it is better to find choice to suit natural talent of the children rather forcing them to follow a certain path which is generally proven and may not have good scope in future.

Demographic pattern for different type of studies should be conducted to find trend of the current position. GOD has given everyone of us a definite task to perform and may not always be the path selected by our parents or mentors. The educationists therefore should keep flexibility of variation at later stage to change or alter the path of study or training. Every person should get opening in any direction at any stage. This can be made by a more flexible system may be Choice Based Credit System.

Basic activities of livelihood should be a part of learning. After secondary education everyone should reach a level of independency for doing any kind of life pushing/ survival basic activities. Let there be some extracurricular activities to focus upon this. Here role of a teacher becomes more important i.e. every student should be treated as a family member.

Advancement in technology has made every child little more aware about one's own surroundings. Younger generation is assumed to learn a little faster, may it be mobile communication or internet access etc. Younger lot relies more highly on EQ (Emotional Quotient) scale than merely IQ i.e. Intelligent Quotient. Education and employment should be delinked for the purpose they are considered same e.g. support in education may be required more for certain segment of the society, hence they should be protected to watch their interests but the same may not be the case in employment where one may find it difficult to perform if not given incentives at right time.

Myths needs to be broken for some misconception developed strongly in younger generation that general category candidates are getting less opportunities in employment. If this continues then we have to compromise with quality at certain level for which common people have to pay heavy taxes.

For a bright future of our nation we have to focus on multiple issues which look very simple but are really complex in nature when one tries to address them. Syllabus, examination scheme, admission criterion, financial support etc have to be planned meticulously to yield expected results at the same time keeping balance in political scenario. We can see a tough challenge before the Governing agency that has to be faced with utmost care & delicacy to move ahead rightly. The undisciplined mind is far better adapted to the confused world in which we live today than the streamlined mind.❑

(Prof. Structural Engineering
Dept. JNV University, Jodhpur)

Madhyamik Shiksha:The Expectations

Two things teachers must completely abandon and they are 'academic negativism' and self centredness. Academic negativism is very powerful in European philosophy, from their philosophies centring on individual existence. They developed thinking into existing individuals, and the subjective perceptions of existing individuals. Subjectivity of individuals, when focused more on, implies philosophies like 'the other is a threat' and the like. Such philosophies go directly against the Bharatiya knowledge tradition of co-existence and concepts of sacrifice.

❑ **Dr. T.S. Girishkumar**

Social existence, which is integrated social existence in Bharatiya epistemology, is essentially a two way – mutual existence. Both 'Integral Yoga' and 'Integral Humanism', the first that of Maharishi Aurabindo and the second that of Shri Deen Dayal Upadhyaya is intrinsically based on the Bharatiya epistemology of co-existence: which becomes explicit through an understanding of the European epistemology of 'difference', that can be easily understood through the theories of Karl Marx who tries to build his theoretical frame work through a theory of 'contradiction'.

Indeed for Bharat, the epistemology of co-existence is not just between individuals or individual and society, it is an integrated existence of everything that is in existence, in whatever form. Given this, teachers who function in society are given duties and society also has given obligations, but that apart, the society does expect certain things from the teachers, which is to be discussed here.

Different tiers of Education

Broadly one could see three tiers in Education pattern. We have a primary, middle and higher education 'wings' and the society maintains some expectations from each wing of education. The discussion here shall be about what are the expectations from Middle wing, of Madhyamik Shiksha.

In primary education, the real foundation laying is what is expected. Once the foundation is well laid, the next task shall be to start building a well thought out structure. In fact, it is here that the real structure begins, from where it is to spread wings and go ahead. This stage is much more important than all other stages, because if this stage is not well laid out, then the very structure is going to suffer, permanently.

Unfortunately, to the best of my understanding, this stage is not well looked after. I came across people showing interest in primary as well as higher education, but from what I come to understand, there is hardly any discussion or attention on Madhyamik Shiksha. Any flaw at this level shall be very fatal to the entire education system and pattern.

Education in Bharat

Bharatiya education has to be unique. How difficult it shall be, to become a good Bharatiya, can only be realised when one really tries to become a Bharatiya. This can be understood in an easier way, let us try to become a

'good' Hindu. On the face of it, this may seem simple, but when one really tries to become a good Hindu, then one shall soon realise that it is not an easy task; and on the contrary, it shall at once become a task so challenging that there shall be hardly any redemption.

How hard it may be to practice 'satvikatva'? how hard it shall be to actually practice 'Ekatmakata'? I heard a story of a Bengali Sadhu, starving as usual, who was given a roti by someone. When he was trying to bite it, there came a dog, hungrier than him. Here, this Sadhu started putting the same roti into the mouth of the dog, breaking it, and also eating himself: and then the onlookers laughed: whereupon the Sadhu exclaimed, "god is feeding god and gods are laughing". How difficult it shall be to practice such Ekatmakata? Let us ponder upon it to realise the difficulty in becoming a Hindu, and then, a Bharatiya.

This indeed is the task before us while venturing into making of Bharatiya Nagariks: and the struggle at once becomes nothing short of any Tapasya. But then, goals are set in front of us to struggle and approximate; in any earnest effort to achieve them.

The areas that we have to concentrate upon

Fundamentally, the education must focus on the epistemology that is unique to Bharat. Rig Veda, the first ever written text of mankind, speaks about universality. It says: "AnoBhadra: KrutavoYantuVishwatha". Meaning, let all noble thoughts, no matter by whom and where, be welcome. Vedas, we know are compiled by Maharishi Veda Vyasa at a place called 'Naimisharyanya' some eighty kilometres from Lucknow. But Maharishi Vyasa has only compiled them into the present existing form: and this directly implies that they had already been in existence much before, in some unknown pattern. It is understood that the Vedas are 'direct experience' of the Maharishis. Experience in Bharat means entirely different phenomena from what European empiricists conceive of, for the European empiricists experience amounts to sense – object contact experience, that subsequently became known as 'cognitive' cognitivity and the like. In Bharat, experience or 'Anubhava' means directly knowing, and that is transsensory; knowing not through sense organs. Nyaya Sutra speaks about more than one kind of perceptions, one is sense-object-contact experience and this is defined as "Sannikar shotpannam Jnanam Pratyaksham". Another kind of perception is Yogic perception, or 'Yogaja', for which sense organs are not used.

This concept of Yogaj shall at once remove much confusion in the minds of some empiricists: they had been ever wondering as to how ancient Bharatiya Acharyas had hit upon all these knowledge without even using glasses. Actually it is a simple phenomenon; the science what we talk about today is nothing other than establishing causal relations, or connections between events or phenomena in question. To establish such causal connections, science had created many instruments through which enquiries are made. What are instruments? Instruments are those artefacts which enhance the capacity of human sense organs, which enable the sense organs to observe and experiment with phenomenal world otherwise not available to sensory perceptions because of limitations of senses.

Now, just think about a knowledge tradition that does not at all need sense organs to know!

Imagine how accurate shall be that information, which are not mediated at all through medium of sense organs and instruments made available? This is what makes Bharatiya knowledge tradition flawless and complete. At this point I should suggest that we Bharatiyas still have to wait; wait for empirical knowledge to reach somewhere near what our Acharyas had written and kept: then it shall happen: the whole world shall remain bewildered and amazed. This also explains why all Bharatiya Acharyas were fundamentally Yogis, who subsequently became Maharishis. Shri AbhinavDwivedi, the Vice President of Hindu University of America in Florida asked me few days ago about the possibilities of reviving these Bharatiya knowledge methods. He was inquiring into the possibilities of creating a Bharatiya methodology of knowing. I am sure, that someday, those young minds that follow us, shall become successful in making it happen.

Our education

Since this is our knowledge tradition, it is mandatory that our education pattern has to place Bharatiya knowledge tradition in proper places of Bharatiya education system. At this point we can only pass on information about how or what it had been in the past; it is definitely not easy for us to make a demonstration of it, but the information must be given. It shall not be easy for many people to believe or accept them, but for the days to come, it is also definite that the whole knowledge world is going to accept them. Therefore, till such a time comes, we have to keep providing information about what had been our past, and when the time really comes, at least Bharatiyas shall not be in for any surprise.

The task is indeed huge. Bharatiya knowledge tradition is so vast and complete; it touches upon virtually all areas of knowledge. To put it in small expression, I should say that Bharatiya knowledge tradition covers from Maharishi Vatsyayana'sKamasutra to Sakaracharya's Advaita Vedanta. Our difficulty does not simply end at the vastness of Bharatiya knowledge tradition; our difficulties get multiplied at the depth of it as well: its systematic expression, logic and all such things keep posing new challenges for ever.

Madhaymik Shiksha

As this is the case with our education, we must gear up ourselves to systematically provide information to the new generations. In primary education we are required to put strong foundation to this, and in madhaymik education we must actually start building up this knowledge tradition information. This stage is to be done deft; any small error can be so devastating for the entire future build up.

Bharatiya society may not be aware of the implications and complexities of education process. As a matter of fact, they need not to know them at all, they give the responsibility to teachers of the society, and expect teachers to fulfil their responsibilities. Let us understand that each institution in the society is assigned with definite and clear responsibilities, and each institution in the society is simply expected to fulfil their duties to their best abilities.

It shall be apt to take the example of our soldiers. Our soldiers, whether on ground, water or air, are given distinct responsibilities, and the society blindly expect them to live up to it. We know very well that Bharatiya soldiers had always been more than living up to the expectations of society and Nation, they had always done much more that what any once can expect. This spirit and dedication is what we want from all establishments in society, and especially from the teachers. The soldiers live for the Nation society, and the teachers also should live for the nation society with the same spirit. Two things teachers must completely abandon and they are 'academic negativism' and self centredness. Academic negativism is very powerful in European philosophy, from their philosophies centring on individual existence. They developed thinking into existing individuals, and the subjective perceptions of existing individuals. Subjectivity of individuals, when focused more on, implies philosophies like 'the other is a threat' and the like. Such philosophies go directly against the Bharatiya knowledge tradition of coexistence and concepts of sacrifice.

A legitimate expectation from the educators shall be to make future minds to receive Bharatiya knowledge tradition. At this point, the educators should inform future generations about what had been Bharatiya knowledge tradition and what is Bharatiya knowledge tradition. They have to carry them forward, and they have to go into the making of Bharatiya methodology of knowing. People like Shri AbhinavDwivedi shall be inspiring, and showing lights, for our time is running out, it shall be for our generations to carry on, and let us make our future generation prepared for this long time task, that shall go on.❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

परीक्षाओं में नकल की महामारी

❑ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

कुछ समय पहले एक पत्रकार द्वारा बिहार के एक नगर (पटना नहीं) में सेकेंडरी बोर्ड की परीक्षाओं के एक केंद्र का लिया गया फोटो चित्र सोशल मीडिया पर वायरल हो गया और समाचार चैनलों एवं समाचारपत्रों के माध्यम से राज्य में नकल की प्रवृत्ति का बीभत्स सच समस्त देश के सामने आ गया। चित्र में केंद्र की बाहरी दीवार पर कई मंजिल तक नकल कराने वाले अत्यंत साहसपूर्वक चढ़ कर छिपकलियों की तरह चिपके हुये हैं और खिड़कियों से अपने चहेतों को पर्चियाँ आदि नकल मैटीरियल पहुँचा रहे हैं। उनकी सहायता करने वालों का जमावड़ा नीचे जमीन पर है और वहीं कुछ पुलिस वाले भी सारी बातों से अनजान बने हुये आराम फरमाते देखे जा सकते हैं।

17 मार्च को शुरू हुई बोर्ड की मेट्रिक परीक्षा में 1100 परीक्षा केंद्रों पर 14 लाख से भी अधिक विद्यार्थी सम्मिलित हुये और पहले दो दिनों में ही 1000 से अधिक नकल करते पकड़े गये। यह सब राज्य में नकल के साम्राज्य को उजागर करता है। स्तर इतना व्यापक है कि ऊपर संदर्भित चित्र के प्रकाशन के बाद वहाँ के शिक्षा मंत्री ने सरकारी तंत्र द्वारा इसे पूरी तरह नियंत्रित किये जाने में असमर्थता प्रकट की और अभिभावकों से प्रभावी सहयोग की अपील की।

कहना न होगा कि नकल का रोग बिहार में बहुत समय से पैर फैला रहा है और अब तो इसकी ख्याति इतनी फैल चुकी है कि एक रपट के अनुसार झारखंड, राजस्थान, ओडिशा आदि से भी इस सुविधा के लिये विद्यार्थी यहाँ से ही परीक्षा देने लग गये हैं। उसी रपट के अनुसार राज्य में नकल कराने वाले सैकड़ों गिरोह सक्रिय हैं जो ठेके पर यह काम करते हैं। आधुनिक संचार प्रौद्योगिकी, मोबाइल, व्हाट्सअप आदि उनका

बाजारीकरण के दौर में समय की सुई को उल्टा घुमाना तो संभव नहीं है परंतु उसके विकृतीकरण के प्रभावों को नीचे तक पहुँचने से रोका अवश्य जा सकता है। मेहनत और अनुशासन तो इस दौर की सफलता के लिये भी आवश्यक शर्तें हैं। फिर हम उनकी पैठ एक बार पुनः समाज के निम्नतम स्तर तक क्यों नहीं बना सकते? यह अनुशासन भी केवल विद्यार्थियों तक सीमित न रह कर आचार्यों और अभिभावकों के लिये भी जरूरी होना चाहिये। बिहार के शिक्षा मंत्री ने जब महामारी के उपचार में अभिभावकों का सहयोग माँगा था तो उसका अपना औचित्य अवश्य था। बहरहाल, नकल की महामारी पर चाहे कैसे भी हो, नियंत्रण अत्यावश्यक है। अन्यथा, चाणक्य, भवभूति और भास्कर का यह देश बौद्धिक दृष्टि से निपट रेगिस्तान बन जायेगा।

कार्य सरल बना देते हैं। जिन आचार्यों पर परीक्षा सुचारू रूप से चलाने का दायित्व होता है वे भी भागीदार होते हैं।

बिहार अत्यधिक बदनाम हो चुका है। परन्तु अन्य राज्य भी पीछे नहीं हैं। उत्तर प्रदेश, हरियाणा आदि में नकल व्यापक स्तर पर है। हरियाणा में इसी बार दो पर्चे कैंसिल हुये और परीक्षायें दोबारा करवनी पड़ी। उत्तर प्रदेश में तो लोक सेवा परीक्षाओं में पेपर लीक हुआ और ओडिशा में पुलिस भर्ती परीक्षाओं में। अभी इसी माह राजस्थान विश्वविद्यालय की एक परीक्षा में यही हुआ। नई तकनीक ने सब कुछ आसान बना दिया है। पेपर खोलते समय कोई आचार्य मोबाइल से पेपर की फोटो ले लेता है और व्हाट्सअप के जरिये बाहर पहुँचा देता है। बस आगे तो तरीका वही है जो लंबे समय से चला आ रहा है।

यह नकल की महामारी, ज्ञान के प्रसार में दीमक का कार्य कर रही है और देश की जड़ों को खोखला बनातीं जा रही हैं। हालात ये हैं कि विद्यार्थी जब उच्चतर कक्षाओं में पहुँचता है तो छूंछा होता है। इसी क्रियाविधि का सहारा लेकर एवं थोड़ी बहुत मेहनत से वह डिग्री तो हासिल कर लेता है परंतु शोध के क्षेत्र में आने पर कुछ भी मौलिक कर पाने में असमर्थ रहता है। यहाँ निरीक्षक की भी प्रतिष्ठा का प्रश्न होता है और वह प्रबंध लिखाने में इमला (श्रुति लेख) का सहारा लेता है या फिर अन्य प्रबंधों से नकल को बढ़ावा देता है। इसीलिये शोध प्रबंधों का स्तर बहुत गिरता जा रहा है। चूंकि सौ प्रतिशत विद्यार्थी नकलची नहीं होते, अत: अभी अखिल भारतीय उच्चतम सेवाओं एवं डॉक्टरी, इंजीनियरिंग आदि में बहुत फर्क नहीं पड़ा है परंतु वहाँ भी यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे घर तो बनाती ही जा रही है। यहाँ प्रश्न तो यह है कि यह सब चलता रहा तो प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों के योग्य शिक्षक ही कहाँ से आयेंगे। कहना न होगा कि नीचे से ऊपर तक शिक्षा का पूरा ढाँचा तहस-नहस होता जा रहा है। स्पष्ट है कि इस महामारी से ग्रसित देश का भविष्य उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता।

कारण खोजने के लिये बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। नये जमाने में समाज में बढ़ती हुई पैसा कमाने की ललक और भ्रष्ट राजनीति ने जिस प्रकार की अनुशासनहीनता को जन्म दिया है और आगे बढ़ने के लिये शार्टकट अपनाने की प्रवृत्ति को दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ाया है, वही इसका भी कारण है। इसके चलते आचार्य तक अपने मार्गदर्शक के पद से विचलित हुये हैं और बढ़-चढ़ कर नकल में भागीदार बन रहे हैं। इसी के चलते उनमें एवं परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में भी मेहनत से बचने की लालसा जाग्रत हुई है। बात यहाँ तक पहुँच गई है कि परीक्षक उत्तरपुस्तिकायें तक ठीक से जाँचने के स्थान पर बेगार टाल रहे हैं। वे कक्षा तक में अपनी ज़िम्मेदारी के उचित रूप से निर्वहन से परहेज करते देखे जा सकते हैं। टिड्डी दल की तरह उगते कोचिंग संस्थानों का राज यही है। तथाकथित समाजवादी सेकुलर सरकारों की लंबे समय से चली आ रही शिक्षा नीति ने जिस तरह की संस्कारहीनता और सांस्कृतिक वैक्युअम पैदा किया है- उसका भी स्पष्ट योगदान है।

एक और भी कारण है- अंग्रेजी के अध्ययन पर निम्नतम कक्षाओं से ही अनावश्यक और अत्यधिक जोर। सामान्य विद्यार्थी अंग्रेजी अच्छी तरह सीख नहीं पाता और सम्पूर्ण शिक्षा से दूर हटने लगता है। इसके कारण अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षित विद्यार्थियों द्वारा एक प्रकार का कॉलोनाइजेशन भी बढ़ता जा रहा है।

बहुधा कहा जाता है कि आधारभूत कारण है प्राप्तांकों से योग्यता का निर्धारण एवं नौकरियों के लिये अच्छे प्राप्तांकों की आवश्यकता। परीक्षार्थियों के मन को ये दो प्रेत निश्चित रूप से मथते रहते हैं परंतु इन सबके लिये प्राप्तांकों का विकल्प है भी क्या? अच्छे विद्यार्थी के चयन के लिये कोई पैरामीटर तो होना ही चाहिये और इसीलिये विश्व भर में परीक्षाओं की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है। इसीलिये विद्यार्थी को अच्छे प्रदर्शन के लिये मेहनत करना, विषय को समझना और ईमानदारी प्रमुख शर्तें हैं। इनका फिलहाल कोई विकल्प नहीं है। हाँ, परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिये हमें प्रयत्न करने पड़ेंगे।

शिक्षा प्रणाली को पूर्वाग्रहों से मुक्त कर उसे संस्कारक्षम बनना होगा। बाजारीकरण के दौर में समय की सुई को उल्टा घुमाना तो संभव नहीं है परंतु उसके विकृतीकरण के प्रभावों को नीचे तक पहुँचने से रोका अवश्य जा सकता है। मेहनत और अनुशासन तो इस दौर की सफलता के लिये भी आवश्यक शर्तें हैं। फिर हम उनकी पैठ एक बार पुन: समाज के निम्नतम स्तर तक क्यों नहीं बना सकते? यह अनुशासन भी केवल विद्यार्थियों तक सीमित न रह कर आचार्यों और अभिभावकों के लिये भी जरूरी होना चाहिये। बिहार के शिक्षा मंत्री ने जब महामारी के उपचार में अभिभावकों का सहयोग माँगा था तो उसका अपना औचित्य अवश्य था। बहरहाल, नकल की महामारी पर चाहे कैसे भी हो, नियंत्रण अत्यावश्यक है। अन्यथा, चाणक्य, भवभूति और भास्कर का यह देश बौद्धिक दृष्टि से निपट रेगिस्तान बन जायेगा।❑

(पूर्व अध्यक्ष-रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)

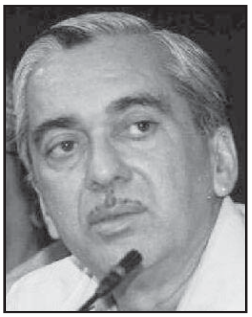

जो समाज अपनी नई पीढ़ी के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं करता है उसकी गतिशीलता शिथिल होती जाती है और वह समय से पिछड़ जाता है। जिस विद्यार्थी का परीक्षा प्रणाली पर विश्वास नहीं होगा, जो यह जान तथा मान चुका होगा कि जिन प्रतिस्पर्धाओं में वह शामिल होता है वहाँ भाई-भतीजावाद तथा कदाचार हावी है तो वह अपने आक्रोश तथा हताशा को कब तक दबायेगा? जो लोग आगे की पीढ़ियों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं उन्हें उजागर करने तथा दंडित करने की जिम्मेदारी भी राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है, जिसमें हर प्रबुद्ध नागरिक को शामिल होना ही होगा। देश की जो साख हजारों सालों में अनगिनत पीढ़ियों ने स्थापित की है उसे बचाना है और आगे बढ़ाना है।

कदाचारों की त्रासदी से घिरी ताकत

❑ **जगमोहन सिंह राजपूत**

देश और विदेश में भारत के सबसे युवा देश होने की बड़ी चर्चा है। ऊँचे पदों पर स्थापित रणनीतिकार जब इस पर चर्चा करते हैं तो उनके चेहरों की चमक देखने लायक होती है। 35 वर्ष के नीचे की 65 प्रतिशत आबादी अपने आप में भविष्य का जो चित्र उभारती है उसकी सही पहचान के लिए आवश्यक है यह भी जानना कि इस युवा भारत का वर्तमान क्या है। मध्याह्न भोजन, स्कूलों में बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण, कुपोषण के प्रतिशत, स्कूलों में बच्चों के पहुँचने की व्यवस्था, पीने के पानी तथा शौचालयों की जमीनी व्यवस्था, अध्यापकों का होना या न होना, स्कूलों का खुलना, न खुलना, बच्चों की अनेक वर्ष स्कूल में रहने के बावजूद नगण्य शैक्षिक उपलब्धियाँ-ये तथा अनेक ऐसे प्रश्न हैं जो लगातार उभरते रहते हैं, मगर इन सब में स्थिति जहाँ की तहाँ रह जाती है, कागजों पर प्रगति के आँकड़े अवश्य बढ़ते रहते हैं। स्कूलों में कक्षा आठ तक सभी उत्तीर्ण। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में भी बच्चे उत्तीर्ण होते रहते हैं-शत प्रतिशत। फिर आती है कक्षा दस की बोर्ड परीक्षा। माता-पिता भी चौकन्ने हो जाते हैं। शिक्षा विभाग के अधिकारी, उनके राजनीतिक आका तथा शिक्षा माफिया इस स्थिति से 'लाभांश' प्राप्त करने के लिए एकजुट हो जाते हैं। परीक्षा में नकल खुद करनी है, दूसरों से मदद लेकर करनी है, किसी और को अपनी जगह बैठाना है या लिखी-लिखाई कापी जमा करानी है, बिहार के वैशाली से सभी के सामने आए चार मंजिली नकल व्यवस्था के चित्र तथा चलचित्र किसी अपवाद के नहीं, एक सोची-समझी, विचारपूर्ण, संगठित वैकल्पिक व्यवस्था का केवल एक और प्रकरण है।

पिछले वर्ष एक घटना पश्चिम उत्तर प्रदेश से समाचार पत्रों में आई। कक्षा दस में नकल

व्यवस्था प्रति छात्र दस हजार रुपये की दर से प्राचार्य ने तय की थी। एक विद्यार्थी केवल सात हजार रुपये दे पाया। प्राचार्य ने तीन पर्चों के बाद उससे कहा कि बाकी जमा कराओ नहीं तो कल से परीक्षा में प्रवेश नहीं मिलेगा। उसकी माँ ने गहने गिरवी रखकर बकाया इकट्ठा करने का प्रयास किया मगर उस बच्चे ने आत्महत्या कर ली। यह किस श्रेणी का अपराध है? समाज और व्यवस्था इससे आँखें कैसे मूंद लेती है? पाँच लाख विद्यार्थी उत्तर प्रदेश में कई वर्ष अनेक कष्ट उठाकर तैयारी करते हैं, प्रदेश की पीसीएस परीक्षा में बैठते हैं और पर्चा 'लीक' हो जाता है। आनन-फानन में बता दिया जाता है कि लोक सेवा आयोग तो पाक-साफ है। आगे की कार्यवाही जारी है। मध्य प्रदेश में अनेक वर्षों से व्यावसायिक संस्थाओं में प्रवेश परीक्षा तथा सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए ली जा रही पात्रता परीक्षा में बेशर्मी से धांधली होती रही, सरकार प्रगति तथा विकास के आँकड़ों में खुश रही-लाखों परिवारों के कष्टपूर्वक जुटाए संसाधन व्यर्थ हो गए, हजारों युवाओं को जीवन पर्यंत निराशा तथा हताशा मिली। इसका 'हर्जाना' कौन भरेगा- यह व्यवस्था तो कतई नहीं जो स्वयं इसमें संलिप्त पाई गई है।

पंजाब के युवा सदा ही अपने शौर्य, वीरता तथा देश के लिए बलिदान करने में अग्रणी रहने के लिए जाने जाते रहे हैं। पिछले लगभग चालीस वर्षों से एक दीर्घकालीन रणनीति के क्रियान्वयन द्वारा इन्हें पथभ्रष्ट करने के प्रयास होते रहे हैं। उग्रवाद ने इन पर जुल्म ढाया, राजनेताओं ने सत्ता में आकर परिवारवाद तथा भ्रष्टाचार को अपनाकर इन्हें जनतांत्रिक अवसरों तथा अधिकारों से वंचित रखा। यहाँ के प्रांतीय लोक सेवा आयोग ने अपनी साख गिराने में ही नाम कमाया। अब इन युवाओं पर 'ड्रग माफिया' की सुनामी लाई गई है। देश के बाहर से नशा सेवन की सामग्री बिना प्रशासनिक तथा राजनीतिक साँठगाँठ तथा संरक्षण के आना

असंभव है। स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। 1922 में गाँधीजी ने लिखा था कि स्वराज आने से भी देश के लोगों को खुशी नहीं मिलेगी, क्योंकि अन्याय, अमीरों के अत्याचार, प्रशासन का बोझ तथा चुनावों की खराबियाँ उन पर भारी पड़ेंगी। आज चुनाव व्यवस्था ने जो भयानक स्वरूप पा लिया है उसके दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। इस दूषित चुनाव प्रथा से जो सत्ता में आते हैं वे अपने लिए विशेषाधिकारों का प्रबंध करने को प्रमुखता देते हैं, चुनाव खर्च की भरपाई करने में तथा अगले चुनाव के धन-प्रबंधन में व्यस्त हो जाते हैं। इनमें से कितने जनसेवकों को इसका ज्ञान भी होगा कि महात्मा गाँधी ने उपर्युक्त संदर्भ में यह भी कहा था कि आशा की एक किरण है-सब तक शिक्षा का पहुँचना। उनके मन मस्तिष्क में 1909 में हिंद स्वराज लिखते समय ही शिक्षा की महत्ता का ही नहीं उसके स्वरूप का चित्र भी बनने लगा था। इसमें आचार, विचार, व्यवहार, भाईचारा, संवेदना, सेवा, सृजनात्मकता, नवाचार, सहयोग, उद्यमिता, प्रकृति संरक्षण तथा ऐसे ही वे सभी तत्त्व शामिल थे जो हर बच्चे तथा युवा को समाज के लिए उपयोगी, सफल, गरिमामय तथा मानवीयतापूर्ण जीवन जीने के लिए तैयार कर सकते थे। आज शिक्षा की सर्वाङ्गीणता, गुणवत्ता तथा उपयोगिता तो अधिकांश युवाओं के लिए घटी ही है। आज जब देश भर में किसी न किसी नेता के अनर्गल बयान, जातीय या महिला विरोधी वक्तव्य सामने आते हैं तो हर तरफ आक्रोश उभरता है। मगर इसका कारण तो अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा की कमी तथा साथ ही बच्चों तथा युवाओं के प्रति समाज तथा सरकार के उत्तरदायित्वों के निर्वहन से आँख फेरने की स्थिति में भी ढूँढ़ा जाना चाहिए।

जो समाज अपनी नई पीढ़ी के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं करता है उसकी गतिशीलता शिथिल होती जाती है और वह समय से पिछड़ जाता है। जिस विद्यार्थी का परीक्षा प्रणाली पर विश्वास नहीं होगा, जो यह जान तथा मान चुका होगा कि जिन प्रतिस्पर्धाओं में वह शामिल होता है वहाँ भाई-भतीजावाद तथा कदाचार हावी है तो वह अपने आक्रोश तथा हताशा को कब तक दबायेगा? जो लोग आगे की पीढ़ियों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं उन्हें उजागर करने तथा दंडित करने की जिम्मेदारी भी राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है, जिसमें हर प्रबुद्ध नागरिक को शामिल होना ही होगा। देश की जो साख हजारों सालों में अनगिनत पीढ़ियों ने स्थापित की है उसे बचाना है और आगे बढ़ाना है। ❑

(लेखक एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक हैं)

परीक्षा मुक्त शिक्षा के लिए जरूरी बहस

बदलते समय के साथ शैक्षणिक संस्थाओं में कई तरह के टेस्ट आदि के नाम पर परीक्षाएँ और बढ़ीं, लेकिन बच्चों की समझ और उनके व्यावहारिक ज्ञान में कमी होती गई। विशेषकर परीक्षा न कराने से सरकारी स्कूल और वहाँ पढ़ने वाले बच्चों पर इसका बहुत उलटा प्रभाव पड़ा है। इस विपरीत प्रभाव की कीमत उन्हें अपने आने वाले समय में चुकानी होगी। इसीलिए कुछ राज्य सरकारों ने तो तुरंत इसे बंद करने की माँग की है। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण पक्ष नई बहस में अब भी बाहर है और वह है बच्चों को उनकी अपनी मातृभाषा में शिक्षा न दिया जाना। यह अकारण नहीं है कि पिछले बीस वर्षों में जैसे-जैसे माध्यम भाषा के रूप में अंग्रेजी लादा जाना जारी है, समझ और ज्ञान के स्तर पर दुनिया भर में भारतीय बच्चों का और शिक्षा संसाधनों का स्तर गिरा है। इस पक्ष पर भी पुनर्विचार करने की जरूरत है कि परीक्षा के बोझ से कहीं ज्यादा नकारात्मक प्रभाव अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा के बोझ का है।

❑ **प्रेमपाल शर्मा**

केंद्र सरकार ने पिछले दिनों देश भर के शिक्षा मंत्रियों के साथ आठवीं कक्षा तक बिना परीक्षा के अगली कक्षा में भेजने की नीति के सभी पक्षों पर विचार-विमर्श किया। केंद्र सरकार यदि पास-फेल के लिए न्यूनतम परीक्षा पर विचार कर रही है तो यह अच्छी बात है। वैसे तो बच्चों को पढ़ाई की मुख्यधारा में शामिल करने और उन्हें लगातार प्रोत्साहित करने के लिए प्रयोग बुरा नहीं था, लेकिन जब इस प्रयोग की सीमायें और उसके कुछ दुष्परिणाम सामने आ गए हैं तो एक अच्छे डॉक्टर की तरह इलाज की धारा भी बदलाव माँगती है। शिक्षा मंत्रालय द्वारा बुलाई गई शिक्षा मंत्रियों की इस बैठक में अधिकांश शिक्षकों ने इस प्रणाली पर तुरंत पुनर्विचार की माँग की है।

परीक्षा के लिए कुछ न्यूनतम मानदंड बनाने के पीछे माँग यह है कि फेल न करने की नीति से पढ़ने-लिखने के स्तर में भारी गिरावट आई है। एनसीईआरटी के अध्ययन अथवा 'प्रथम' संस्था के सर्वेक्षणों से बार-बार यह बात सामने आ रही है कि आठवीं के बच्चे भी अपना नाम और विषयों के नाम सही नहीं लिख पाते। पांचवीं का बच्चा दूसरी कक्षा का गणित का सवाल नहीं कर पा रहा और सातवीं का बच्चा तीसरी कक्षा की किताब भी नहीं पढ़ पा रहा। कारण स्पष्ट है कि जब अगली क्लास में जाने से पहले कोई परीक्षा ही नहीं तो पढ़ने-लिखने की समझ आएगी कैसे? माना कि सिर्फ परीक्षा लिखने-पढ़ने की समझ के लिए अनिवार्य नहीं होती, लेकिन जिस देश के स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक ही न हों और यदि हैं भी तो सरकारी शिक्षकों को चुनाव, जनगणना या दूसरे कामों में थोप दिया गया हो तो वे बच्चों को पढ़ाएंगे कब? और जैसा कि स्पष्ट है देश के अधिकांश गाँवों में किसान, मजदूर अपने बच्चों को खुद पढ़ा नहीं सकते इसलिए परीक्षा के नाम पर बच्चों के उत्पीड़न और तनाव की खामियों को तो दूर करने की जरूरत है, लेकिन उससे पूर्णत: मुक्ति से तो शिक्षा व्यवस्था और बिगड़ेगी। पिछले दस वर्ष के आँकड़े इसके गवाह हैं। स्कूलों में नामांकन तो बढ़ा है, लेकिन स्तर की गिरावट भयानक कही जा सकती है।

परीक्षा से मुक्ति के संदर्भ में थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए कि मौजूदा परीक्षा प्रणाली

बच्चों की समझ को बढ़ाने में इतनी मदद नहीं करती, जितनी कि उन्हें शिक्षा से दूर करने में, लेकिन क्या भारतीय संदर्भ में परीक्षा से बचा जा सकता है? क्या 12वीं में फिर वही बोर्ड आतंक पैदा नहीं करता? या आइआइटी, मेडिकल या अन्य किसी भी व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश परीक्षा के उन्हीं रटंत सिद्धांतों पर नहीं होता जिसे दसवीं तक समाप्त कर दिया गया है। वक्त के साथ ये प्रवेश परीक्षायें तो और बढ़ी ही हैं। किसी वक्त दिल्ली के स्नातक, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में बोर्ड के नंबरों के आधार पर प्रवेश मिल सकता था। अब हर पाठ्यक्रम में प्रवेश परीक्षा है और इसमें बैठने वाले भी चंद सीटों के लिए हजारों, लाखों में हैं। विद्यार्थियों पर भी बोझ और उससे ज्यादा उनकी जाँच करने वाले शिक्षकों, परीक्षकों पर। दोनों ही पक्ष, परीक्षा की कवायद से हताहत और बेहाल। इसी का अगला विस्तार नौकरी की परीक्षायें हैं वह चाहे यूपीएससी की सिविल सेवा परीक्षा हो या बैंक, कर्मचारी चयन आयोग, सरकारी-गैर सरकारी उपक्रमों में भर्ती। या तो यहाँ भी परीक्षा से मुक्ति के उपाय सोचे जायें वरना पहले परीक्षा से दूरी और फिर अंततः उसी पहाड़ पर चढ़ने की कवायद शिक्षा के उद्देश्यों को निष्प्रभावी बना रही है।

अगली कक्षा में जाने के लिए आठवीं तक परीक्षा समाप्त करने का प्रयोग कोई बुरा नहीं था। उसके पीछे बोर्ड की वार्षिक परीक्षाओं के उस तनाव से मुक्ति की तलाश थी जिसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे अक्सर पढ़ाई बीच में छोड़ देते थे। 'सतत और समग्र मूल्यांकन' की बात इसीलिए शामिल की गई थी, लेकिन कुछ इस मूल्यांकन को शिक्षक नहीं समझ पाए और कुछ हमारे पूरे समाज के सामाजिक स्तर से लेकर शैक्षणिक संस्थाओं में पक्षपातपूर्ण व्यवहार से परीक्षा में और विकृतियाँ बढ़ रही हैं।

बदलते समय के साथ शैक्षणिक संस्थाओं में कई तरह के टेस्ट आदि के नाम पर परीक्षायें और बढ़ीं, लेकिन बच्चों की समझ और उनके व्यावहारिक ज्ञान में कमी होती गई। विशेषकर परीक्षा न कराने से सरकारी स्कूल और वहाँ पढ़ने वाले बच्चों पर इसका बहुत उलटा प्रभाव पड़ा है। इस विपरीत प्रभाव की कीमत उन्हें अपने आने वाले समय में चुकानी होगी। इसीलिए कुछ राज्य सरकारों ने तो तुरंत इसे बंद करने की माँग की है। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण पक्ष नई बहस में अब भी बाहर है और वह है बच्चों को उनकी अपनी मातृभाषा में शिक्षा न दिया जाना। यह अकारण नहीं है कि पिछले बीस वर्षों में जैसे-जैसे माध्यम भाषा के रूप में अंग्रेजी लादा जाना जारी है, समझ और ज्ञान के स्तर पर दुनिया भर में भारतीय बच्चों का और शिक्षा संसाधनों का स्तर गिरा है। इस पक्ष पर भी पुनर्विचार करने की जरूरत है कि परीक्षा के बोझ से कहीं ज्यादा नकारात्मक प्रभाव अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा के बोझ का है।

दुनिया भर के राष्ट्रों के अनुभव से सीखते हुए कम से कम प्राथमिक स्तर पर बच्चों की शिक्षा अपनी भाषाओं में ही दिए जाने की जरूरत है। याद करें पचास और साठ के दो-तीन दशकों में अपनी भाषाओं में शिक्षा देने के कारण ही शिक्षा और शोध की गुणवत्ता आज के मुकाबले कई गुना बेहतर बनी हुई थी। देश की बिगड़ती शिक्षा व्यवस्था के मद्देनजर अच्छा होगा कि शिक्षा मंत्रालय परीक्षा, माध्यम भाषा और यथासंभव समान स्कूल प्रणाली जैसे सभी मुद्दों पर विमर्श के लिए 1964-66 में बने कोठारी आयोग की तरह विद्वानों की तर्ज पर एक समिति गठित करे, जिससे कि शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित दिसंबर 2015 तक शिक्षा का एक वैकल्पिक और सार्थक रूप सामने आ सके।❑

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

अलवर जिलाधीश कार्यालय पर राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का धरना

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) जिला अलवर के शिक्षकों ने प्रान्तीय आह्वान पर 6 सूत्री मांग पत्र को लेकर जिलाध्यक्ष रामअवतार शर्मा की अध्यक्षता में जिलाधीश कार्यालय पर शिक्षकों ने दिनांक 27 अप्रेल को विशाल धरना दिया गया। धरना स्थल पर शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए जिलाध्यक्ष ने शिक्षकों की माँगों पर सरकार की ढुलमुल नीति का विरोध करते हुए माँग की कि शिक्षकों की वाजिब मांगों को सरकार संगठन से वार्ता कर शीघ्र हल करें। शिक्षकों के धैर्य की परीक्षा नहीं लेवें। जब जब भी शिक्षक अपनी माँगों को लेकर सड़क पर उतरा है तब तब सरकारें पदच्युत हुई हैं। सरकार ने शिक्षा विभाग को प्रयोगशाला बना रखा है। वातानुकूलित कमरों में बैठ कर शिक्षा नीति बनाते हैं जबकि वास्तविक परिस्थिति को ध्यान में नहीं रखते हुए एवं राजस्थान जैसे प्रदेश की भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु को ध्यान में रखते हुए विद्यालयों का समय नहीं बढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि अधिकतर विद्यालयों में भवन, पानी एवं विद्युत का अभाव है तथा विद्यालयों के समय को बढ़ाने से अभिभावकों एवं शिक्षकों दोनों में भारी आक्रोष व्याप्त है। 2012 में नियुक्त अध्यापकों को स्थायी कर नियमित वेतन दिया जाये। महिला एवं पुरुषों की एक वरियता सूची बनाई जाये। पातेय वेतन पर कार्यरत शिक्षकों एवं संस्था प्रधानों को पदावनत नहीं किया जाये बल्कि डी.पी.सी. कर स्थायी किया जाये। प्रतिबन्धित जिले के शिक्षकों को राहत देते हुए उनके स्थानान्तरण पर लगी रोक को तत्काल हटाया जाये।

शिक्षकों ने माँगों का ज्ञापन शिक्षामंत्री राजस्थान सरकार, प्रमुख शासन सचिव माध्य. शिक्षा सचिव, प्रारम्भिक शिक्षा के नाम ज्ञापन जिलाधीश श्री महावीर स्वामी के माध्यम से दिया गया।

शिक्षा की दुर्दशा

❑ राजेन्द्र भाणावत

राजस्थान उच्च न्यायालय ने एपीपी चयन में विलम्ब को लेकर राज्य सरकार की कार्य प्रणाली के संबंध में हाल ही में जो टिप्पणियां की है, वह सरकार को जाग्रत करने का काम कर सकती है।

न्यायालय को तो यहाँ तक कहना पड़ा कि इस स्थिति की जानकारी जापान को हो जाय तो यहाँ निवेश करने कोई नहीं आएगा। न्यायालय को शायद यह जानकारी न हो कि सरकार के लगभग सभी विभागों की स्थिति कमोबेश ऐसी ही है। उदाहरणत: शिक्षा को ही लें।

सरकार ने कुछ दिनों पूर्व यह घोषणा की कि राज्य के सभी पंचायत मुख्यालयों पर स्थित विद्यालयों को उच्च माध्यमिक विद्यालयों में क्रमोन्नत कर दिया जाएगा। इसी सप्ताह पश्चिमी राजस्थान के विद्यालयी शिक्षकों से चर्चा के दौरान ज्ञात हुआ कि क्रमोन्नत विद्यालयों में व्याख्याताओं के लगभग सभी पद रिक्त पड़े हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के विद्यार्थी कैसे ऐच्छिक विषयों का अध्ययन करेंगे, इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। सरकार को यह सोच बदलनी होगी कि अधिकाधिक उच्च माध्यमिक विद्यालय खोलने मात्र से शिक्षा के अवसर उपलब्ध हो जाएंगे।

यह निर्णय भी लिया गया कि नए क्रमोन्नत होने वाले विद्यालयों में से एक तिहाई में कला, एक तिहाई में वाणिज्य तथा एक तिहाई में विज्ञान संकाय होगा। विज्ञान संकाय के विषय जैसे भौतिकी, रसायन शास्त्र या जीव विज्ञान के लिए न केवल प्रयोगशालाओं की अनिवार्यता होती है, अपितु इन्हें बिना उपयुक्त व्याख्याताओं के द्वारा पढ़ाना और समझाना लगभग असंभव है।

कहीं सरकार का यह सोच तो नहीं है कि बिना शिक्षकों के छात्र अपने स्तर पर व्यवस्था कर परीक्षा में बैठकर उत्तीर्ण हो जाएंगे। यदि वास्तव में ऐसा है तो यह संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था पर ही बड़ा प्रश्न चिह्न खड़ा करती है।

हजारों की संख्या में माध्यमिक विद्यालयों को उच्च माध्यमिक विद्यालयों में क्रमोन्नत करने से माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापक सरप्लस हो गए हैं एवं यह समझ में नहीं आ रहा है कि इनका क्या किया जाय। चर्चा यह भी है कि इनको पदावनत कर द्वितीय श्रेणी के शिक्षक बना दिया जाय। इससे क्या इनके मनोबल पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा एवं शिक्षक वर्ग में आक्रोश नहीं उपजेगा? शिक्षकों का मनोबल गिराकर शिक्षा की दुर्दशा को ही सुनिश्चित किया जा सकता है।

इसी प्रकार विद्यालयों के एकीकरण हेतु भी तुगलकाना तरीका अपनाया गया। प्राथमिक विद्यालय भवनों के निर्माण पर गत वर्षों में करोड़ों रुपए व्यय किये गये। एकीकरण की दोषपूर्ण प्रक्रिया के कारण ये हजारों भवन अनुपयोगी हो गए एवं जिन विद्यालयों में इनका एकीकरण किया गया, वहाँ कमरों की कमी के कारण विद्यार्थियों के बैठने की समस्या उत्पन्न हो गई।

प्रारंभिक शिक्षा के स्तर में गिरावट तो कई बार सिद्ध हो चुकी है, जिनमें 'प्रथम' द्वारा जारी 'असर' रिपोर्ट प्रमुख है। राजस्थान प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में किए गए कई नवाचारों का गढ़ रहा है, जिनमें 'लोक जुम्बिश' एवं 'शिक्षा कर्मी' ने तो राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान भी बनाई। दुर्भाग्यवश हमने इन सफल प्रयोगों का कोई लाभ न तो मुख्य धारा की शिक्षा व्यवस्था में लिया, न ही शिक्षण व्यवस्था में।

शिक्षा कर्मी परियोजना की सफलता ने यह स्पष्टत: प्रतिपादित किया कि स्थानीय, सदैव उपलब्ध शिक्षक निरन्तर सघन प्रशिक्षण एवं समुदाय के जुड़ाव से बेहतर शिक्षक बन सकता है, ऐसे शिक्षक की तुलना में जो शैक्षणिक योग्यताएं तो बहुत रखता हो किन्तु जिसका समुदाय से कोई जुड़ाव न हो एवं सामान्यतया अनुपस्थित रहता हो। पाठ्यक्रम और पुस्तकों की भी लगभग यही स्थिति है।

अधिकांश शिक्षाविद् एवं पाठ्यपुस्तकों के लेखक अच्छे अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़े

हजारों की संख्या में माध्यमिक विद्यालयों को उच्च माध्यमिक विद्यालयों में क्रमोन्नत करने से माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापक सरप्लस हो गए हैं एवं यह समझ में नहीं आ रहा है कि इनका क्या किया जाय। चर्चा यह भी है कि इनको पदावनत कर द्वितीय श्रेणी के शिक्षक बना दिया जाय। इससे क्या इनके मनोबल पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा एवं शिक्षक वर्ग में आक्रोश नहीं उपजेगा? शिक्षकों का मनोबल गिराकर शिक्षा की दुर्दशा को ही सुनिश्चित किया जा सकता है। इसी प्रकार विद्यालयों के एकीकरण हेतु भी तुगलकाना तरीका अपनाया गया। प्राथमिक विद्यालय भवनों के निर्माण पर गत वर्षों में करोड़ों रुपए व्यय किये गये।

हुए अपने-अपने विषय के विद्वान होते हैं एवं उनकी यह इच्छा रहती है कि बच्चा प्राथमिक कक्षाओं में ही उनके विषय का ज्ञाता बन जाए। कम से कम राजकीय विद्यालयों की कक्षा 8 तक की पुस्तकों को देखकर तो यही लगता है।

लेखक का स्पष्ट मत है कि अधिकांश शिक्षक इन पुस्तकों पर आधारित प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाएंगे। अंग्रेजी की स्थिति तो और भी बदतर है। जिन विद्यार्थियों के अभिभावक भलीभाँति हिन्दी नहीं पढ़ पाए, उन्हें पाँचवी कक्षा में ही अंग्रेजी की कठिन पुस्तकें थमा देना विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाला बच्चा 6 वर्ष का होने पर पहली बार विद्यालय जाता है, वहीं शहरों के बड़े विद्यालयों में कक्षा एक में प्रवेश से पूर्व वह 3 वर्ष तक विद्यालय जा चुका होता है।

दोनों के लिए एक प्रकार की पुस्तकें कैसे हो सकती है? यह बात दिल्ली और जयपुर में बैठे शिक्षाविदों और प्रशासकों को समझ में क्यों नहीं आती? यदि गाँवों में जाकर प्रारंभिक कक्षाओं के बच्चों के वास्तविक स्तर का अध्ययन कर लें तो उनकी आंखें स्वयं ही खुल जाएंगी और शिक्षा की दुर्दशा की स्थिति स्पष्ट हो जाएगी।

प्रो. यशपाल ने वर्षों पूर्व बच्चों के बस्ते को हल्का करने की सिफारिश की थी, किन्तु समय के साथ बोझ बढ़ता ही गया और शिक्षा का स्तर गिरता चला गया। हमें करना कुछ नहीं है, केवल अपनी गलती स्वीकार कर अपने यहीं के अनुभवों के आधार पर बदलाव कर सुधार की दिशा में आगे बढ़ना है। आशा है शिक्षामंत्री एवं शिक्षा प्रशासक इस ओर ध्यान देंगे। ❑

(सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी)

Teach them Young Watch them thrive!

❑ Sudeshna Chatterjee

Sea, sea!," exclaims a four-year-old girl, excited to notice a puddle. Dr Reeta Sonawat, identified as a global leader in Early Childhood Education by the World Forum Foundation, explains, "The child is from Mumbai and has a concept of the sea as a body of water. This is assimilation. Now, through the process of accommodation, with the help of her teachers, she will begin to understand the difference between a puddle, a pond, a lake and a sea. Here comes the efficacy of pre-primary education or Early Childhood Education (ECE)".

ECE is for children in the age group of three to six. Eighty per cent of the brain develops in the period from birth to five years, which means eighty per cent of the neuron connectivity happens during this time. Every time a child learns something, fresh neuron connectivity happens. Perhaps, this is reason enough to place emphasis on ECE. But, it is not just a question of neuron connectivity. It is also for building emotional bonds. "Most families today have a nuclear set-up, and often both parents are working. So, it is at an ECE centre that a child learns to communicate and bond with individuals of his or her age group. It is also here that a child gets to understand the importance of a 'group'. We make the child communicate in small groups to understand the importance of sharing and caring. It also brings about significant development in the linguistic ability of the child. A child can speak and understand things in a better manner because of this exposure to the outside world," says Sonawat, Dean, Faculty of Home Science, S.N.D.T Women's University.

Arundhati Chavan, President of the Parent Teachers Association United Forum that covers 140 Maharashtra schools observes, "Children get exposed to numbers, letters and shapes. But, more importantly, they learn to socialise and share. Social skills such as learning to listen, when to say please, thank you or sorry and how to speak in a group are all developed and sharpened". Getting to know a larger number of people, many from the same age group, also makes the child more confident. Bosco Charles, father of a three-year-old, maintains that his son, despite having an older sister, began exuding more confidence when he started going to an ECE centre.

Chavan observes, "Children who attend high-quality preschools enter kindergarten with better pre-reading skills, richer vocabularies and stronger basic math skills than those who don't; preschool provides a place where a child can gain a sense of self, explore, play with his or her peers and build confidence. Even introverted children open up. Kids in preschool discover that they are capable and can do things for themselves—from small tasks like pouring their own juice and helping set snack tables to tackling bigger issues such as making decisions about how to spend their free time." Their speech development reveals an interesting pattern. First, the children point out names of people and objects around them. Then they pick up action words. In the next and perhaps more significant development, they start talking about their world and their ideas of it. This is a crucial ECE phase. It is here that they develop concepts about their country, its festivals, rituals and food, as well as different professions—such as doctors and teachers—which they enact. Life thus becomes more activity-driven and thus more fun, observe the experts. ❑

शिक्षा नहीं तो बोझ बन जाएंगे युवा

❑ टीएसआर सुब्रमनियन

कपिल सिब्बल ने निरर्थक शिक्षा का अधिकार कानून लागू कर शिक्षा व्यवस्था को बदहाल कर दिया। इससे भी ज्यादा नुकसान तनाव कम करने के नाम पर छोटी कक्षाओं में वार्षिक परीक्षा खत्म करने से हो रहा है। यही तर्क दसवीं और यूनिवर्सिटी स्तर पर होने वाली परीक्षाओं के लिए दिया जा सकता है। बिहार के राजनीतिज्ञों ने पूरे देश को नीचा दिखाया है। देश में शिक्षा की बदतर हालत के बारे में सभी जानते हैं। स्कूली शिक्षा का सर्वे करने वाली असर की सालाना रिपोर्ट्स में पिछले कुछ वर्षों से शिक्षा के गिरते स्तर पर लगातार चिंतनीय तथ्य सामने आ रहे हैं। ताजा रिपोर्ट में बताया गया है कि पाँचवीं कक्षा के अधिकांश छात्र दूसरी कक्षा का पाठ भी नहीं पढ़ सकते। यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि हाई स्कूल की बोर्ड परीक्षाओं के लिए वे कितने तैयार होंगे। कक्षा में टीचर उपस्थित नहीं होते।

कुछ सप्ताह पहले बिहार में दसवीं की परीक्षा के दौरान बड़े पैमाने पर नकल की खबरें मीडिया में आईं। टीवी चैनलों पर एक छहमंजिले भवन पर बेतरतीब ढ़ंग से लटकते लोग, जो अपने पुत्र, पुत्री, भाई या मित्र की मदद के लिए आए थे, की तस्वीर काफी चर्चित रही। ये लोग बोर्ड परीक्षा के दौरान परीक्षार्थियों को नकल की पर्ची भवन के अंदर पहुँचाने की कोशिश कर रहे थे। हैरत की बात तो यह है कि प्रशासनिक और परीक्षा संचालन के लिए जिम्मेदार अधिकारियों की नजर इस पर नहीं पड़ी, जबकि पूरे राज्य में यही आलम था। ऐसा कैसे हो सकता है कि जिलों के प्रशासकीय अधिकारियों को इस बारे में पता न हो? सच तो यह है कि राज्य सरकार के शिक्षा विभाग ने सभी जिलों को पत्र लिखकर नकल करने वालों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई का निर्देश दिया था। लेकिन जिला प्रशासन के अधिकारी यह निर्देश मातहतों तक पहुँचाकर निश्चिंत हो लिए। प्रशासकीय दिखावे का आलम यह था कि एक ओर छात्र आराम से नकल कर रहे थे, तो दूसरी ओर हथियारबंद गार्ड परीक्षा भवन में ही सामने खड़े होकर नकलचियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की चेतावनी दे रहे थे। इतना ही नहीं, कई जगहों पर तो परीक्षा भवन में मौजूद निरीक्षक ही छात्रों को सही जवाब बताकर उनकी मदद कर रहे थे। इससे ज्यादा शर्मनाक और दिल दुखाने वाली हालत की कल्पना नहीं की जा सकती।

खबर प्रसारित होने के बाद लोग अगले दिन बड़े फेरबदल की उम्मीद कर रहे थे। संभावना थी कि कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही बरतने के चलते परीक्षा विभाग के बड़े अधिकारियों को निलंबित किया जाएगा या कम से कम शिक्षा सचिव का तबादला होगा। ऐसा कुछ नहीं हुआ। इसके विपरीत राज्य के शिक्षामंत्री ने बयान देकर नकल रोकने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। क्या यह कारण उनके पद से इस्तीफा देने के लिए पर्याप्त नहीं है? इसमें कोई संदेह नहीं कि वे इस पद के लायक नहीं हैं और उन्हें बर्खास्त किया जाना चाहिए था। इसके ठीक बाद पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव ने कहा कि उनकी सरकार होती तो वे छात्रों को नकल के लिए किताब ले जाने से भी नहीं रोकते। दूसरे शब्दों में कहें तो वे नकल को कानूनी दर्जा देने की वकालत कर रहे थे। समस्या यह है कि दसवीं के अधिकतर छात्र यह

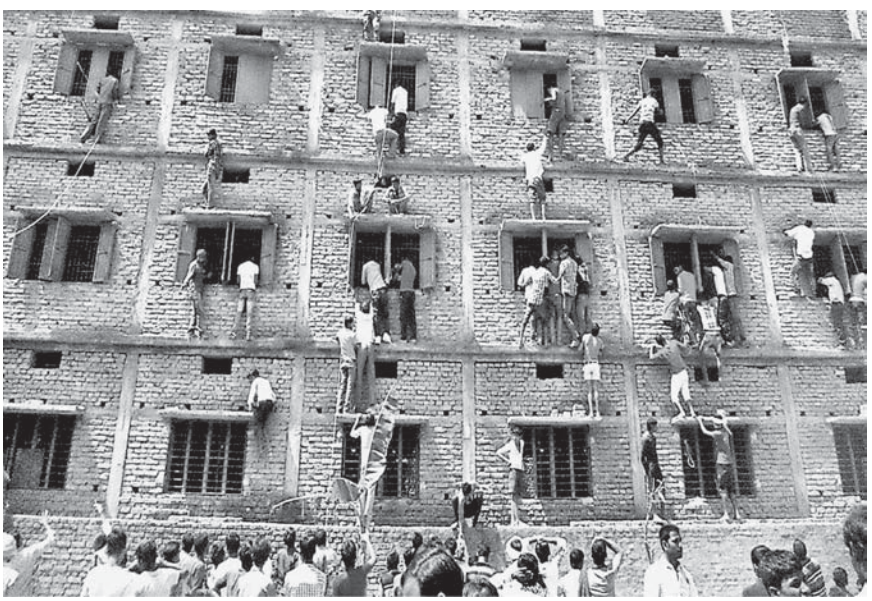

नहीं जानते कि किताब में नकल कहाँ से करनी है। तीन घंटे का समय किताब की नकल करने के लिए पर्याप्त नहीं होता। इससे भी दुखद तो यह है कि खुद को ईमानदार बताने वाले मुख्यमंत्री नीतीश कुमार इन्हीं लालू की मदद से अगले विधानसभा चुनाव में जीत की जमीन तैयार करने में लगे हैं। क्या यह शर्मनाक नहीं है? 70 साल पहले क्या हमारे संविधान निर्माताओं ने लोकतंत्र के लिए यही सपना देखा था?

सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक थी इस मुद्दे पर केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री की चुप्पी। पूरे देश में शिक्षा का स्तर बेहतर बनाए रखने की जिम्मेदारी उनके पास है, उनकी चुप्पी कहीं यह इशारा तो नहीं करती कि उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता? या फिर इसका कारण कहीं राजनीतिक तो नहीं क्योंकि प्राथमिक शिक्षा राज्य सूची में शामिल है। यह भी हो सकता है कि इसे कानून और व्यवस्था की सामान्य समस्या मानकर उन्होंने अपने हाथ पीछे खींच लिए हों। बिहार में इस साल के अंत में चुनाव होने हैं। यह भी हो सकता है कि वे जनभावनाओं को अपनी पार्टी के खिलाफ नहीं जाने देना चाहती हों। यदि यह सच है तो इससे ज्यादा कष्टदायक और कुछ नहीं हो सकता। ताज्जुब तो यह है कि अब यह मुद्दा पृष्ठभूमि में जा चुका है। न तो मीडिया की इसमें कोई रुचि है, न ही बाकी लोगों की। ऐसा लग रहा है जैसे कुछ हुआ ही न हो। हमारी शिक्षा व्यवस्था और लोकतंत्र के लिए इससे बड़ा संकट नहीं हो सकता। देश के दूसरे हिस्सों में लोग इसकी चुटकियाँ लेते हैं। कहा जाता है कि जैसा बिहार में होता है, पाँच साल बाद उत्तर प्रदेश में भी वैसा ही होने लगता है। (झांसी डिवीजन में सार्वजनिक नकल की शुरुआत पहले ही हो चुकी है।) उत्तर प्रदेश से दिल्ली पहुँचने में इसे फिर पाँच वर्ष का समय लगता है। लेकिन यहाँ ग्रेशम लॉ लागू होता है इसके अनुसार खराब चीजें तेजी से फैलती हैं जबकि अच्छी चीजों की रफ्तार मंद पड़ जाती है। पिछले सप्ताह बिहार और उत्तर प्रदेश में जो हुआ और दोनों राज्यों के राजनीतिक नेतृत्व ने इस पर जो प्रतिक्रिया दी, वह बेहद निराश करने वाला है। कपिल सिब्बल ने निरर्थक शिक्षा का अधिकार कानून लागू कर शिक्षा व्यवस्था को बदहाल कर दिया। इससे भी ज्यादा नुकसान तनाव कम करने के नाम पर छोटी कक्षाओं में वार्षिक परीक्षा खत्म करने से हो रहा है। यही तर्क दसवीं और यूनिवर्सिटी स्तर पर होने वाली परीक्षाओं के लिए दिया जा सकता है। बिहार के राजनीतिज्ञों ने पूरे देश को नीचा दिखाया है।

देश में शिक्षा की बदतर हालत के बारे में सभी जानते हैं। स्कूली शिक्षा का सर्वे करने वाली असर की सालाना रिपोर्ट्स में पिछले कुछ वर्षों से शिक्षा के गिरते स्तर पर लगातार चिंतनीय तथ्य सामने आ रहे हैं। ताजा रिपोर्ट में बताया गया है कि पाँचवीं कक्षा के अधिकांश छात्र दूसरी कक्षा का पाठ भी नहीं पढ़ सकते। यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि हाई स्कूल की बोर्ड परीक्षाओं के लिए वे कितने तैयार होंगे। कक्षा में टीचर उपस्थित नहीं होते। छोटी कक्षाओं में भाषा और गणित की पढ़ाई का स्तर इतना खराब है कि बड़ी कक्षा में आने पर छात्र को कुछ समझ नहीं आता और वह स्कूल जाना छोड़ देता है। नतीजा, स्कूलों में ड्रॉपआउट रेट काफी ज्यादा है। स्कूली शिक्षा व्यवस्था में सैकड़ों कमियां हैं, लेकिन कोई इस ओर ध्यान नहीं दे रहा। जिम्मेदार लोग तो समस्या को पहचानने से ही इंकार करते हैं।

प्रधानमंत्री ने डिजिटल इंडिया पर जोर देकर बिलकुल सही किया है। सूचना प्रौद्योगिकी का फायदा उठाने के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता अनिवार्य है। पूरा विश्व, यहाँ तक कि सबसे अविकसित राष्ट्र भी, बेहतर शिक्षा और ऊँची साक्षरता दर की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। हमारे प्रधानमंत्री देश की युवा आबादी का फायदा उठाने की बात करते हैं, लेकिन यदि करोड़ों अशिक्षित-अर्धशिक्षित युवा सड़कों पर घूमने लगें तो यह देश के लिए सबसे बड़ी समस्या बन सकती है। वे किसी रोजगार के लायक नहीं होंगे और यह देश की सुरक्षा के लिए भी खतरनाक होगा। देश के युवाओं को स्किल प्रशिक्षण की जरूरत है, लेकिन प्राथमिक शिक्षा का स्तर ठीक नहीं हो तो इसका कोई फायदा नहीं। शिक्षा क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सुधारों की तत्काल आवश्यकता है। यह खतरे की घंटी है क्योंकि किसी को इसकी चिंता नहीं है।❑

(लेखक पूर्व कैबिनेट सचिव हैं)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का पुनर्गठन

❑ एस. शंकर

डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता वाले 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' (1948) की रिपोर्ट और अनुशंसा के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) बना था। यदि उस रिपोर्ट को आज पढ़कर हमारे विश्वविद्यालयों से तुलना करें, तो दिखेगा कि यूजीसी कितना निष्फल साबित हुआ है। इसकी चिंताओं में मुख्य बात ही खो गई है कि विश्वविद्यालय क्या होता है, उसे किसलिए बनाया गया है? आज अधिकांश विश्वविद्यालय केवल कागजी डिग्री बाँटने के संस्थान हो गए हैं, जिसका डिग्रीधारी की वास्तविक योग्यता और अर्जित ज्ञान से कोई संबंध नहीं। यहाँ तक कि असंख्य कॉलेजों, विश्वविद्यालयों के अनेक प्राध्यापक भी अपेक्षित योग्यता से बहुत दूर हैं। तब इन सब पर देश का अरबों रुपया किसलिए नष्ट किया जाता है? यूजीसी मात्र शिक्षा मंत्रालय द्वारा मिले धन को विश्वविद्यालयों तक पहुँचा रही है। किंतु यह यांत्रिक काम तो मंत्रालय का एक उप-विभाग भी कर सकता है। यूजीसी का वास्तविक कार्य तो उच्च शिक्षा और शोध की गुणवत्ता बढ़ाने की व्यवस्था करना है। यदि यह कार्य पूर्णत: भुलाया जा चुका है, तो ऐसी संस्था बंद कर देना ही श्रेयस्कर है। लेकिन इसका विकल्प कैसा होगा? यह गारंटी कैसे करें कि नई संस्था भी उसी औपचारिकता की शिकार न हो जाए? नीति-निर्माताओं को असली माथा-पच्ची इसी पर करनी चाहिए। देश-विदेश के अनुभवों, तरीकों का यथार्थ विश्लेषण करना चाहिए। हमारे ज्ञानियों की सम्मति पर भी ठीक से ध्यान देना चाहिए। यह कार्य स्वतंत्र भारत में अभी तक नहीं किया गया। हमारी उच्च शिक्षा और आम शैक्षिक व्यवस्था की खामियों का एक बड़ा कारण यह भी है।

इस कड़वी सच्चाई को बहुत से लोग समझने में भी कठिनाई महसूस करेंगे कि देश में अनेक सामाजिक बीमारियों, गड़बड़ियों, कदाचार, गंदगी, उद्दंडता, भ्रष्टाचार, अनाचार आदि का सीधा संबंध शिक्षा के अर्थ को नष्ट करने से ही है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ है-शिष्टाचार, सदाचार, सद्विचार, आत्म-सम्मान, कर्तव्य आदि का पूर्ण बोध कराना। इसका रोजगार की योग्यता से कभी कोई संबंध नहीं रहा है। यूरोप, अमेरिका में भी शिक्षा का यह बुनियादी अर्थ बना हुआ है। इसीलिए वहाँ स्वच्छता, शालीनता, अपना और दूसरों का सम्मान, नियम पालन आदि का सामान्य परिदृश्य है। इन बातों को लोग कोरा आदर्शवाद समझते हैं। मगर यही ठोस यथार्थ है। एक सामान्य अमेरिकी

हमें उच्च शिक्षा ही नहीं, बल्कि संपूर्ण शिक्षा की चिंता इसी दृष्टि से करनी चाहिए। हम अपने देश में शिक्षित, उच्च-शिक्षित और विद्वान का वास्तविक अर्थ पुनर्स्थापित करें। यह तभी होगा जब शिक्षा पर हावी भौतिकवादी दृष्टि से छुटकारा पाया जाएगा। मनुष्य केवल शरीर नहीं है। उसके मन, आत्मा और चेतना भी हैं। इन सभी पक्षों के समुचित विकास की चिंता शिक्षा ही करती है। अत: शिक्षा, डिग्री और रोजगार को अलग-अलग प्रवर्ग में रखकर देखना, समझना आरंभ करें। हमारी कई सामाजिक व्याधियों का उपचार तभी संभव है। इस जरूरी कार्य से बचकर हम एक-दूसरे को भुलावा तो दे सकते हैं, विश्व में अपना सम्मानजनक स्थान कभी प्राप्त नहीं कर सकते। विश्वविद्यालय सर्वोच्च ज्ञान-केंद्र होते हैं।

बच्चा जहाँ-तहाँ नहीं थूकता। सामान्य ब्रिटिश ट्रैफिक सिपाही किसी गाड़ी वाले से कुछ लेकर उसकी गलती की अनदेखी नहीं करता। क्यों? इसलिए कि उसके पास अपने चरित्र, सम्मान तथा देश-समाज के प्रति कर्तव्य की निश्चित समझ है, जो उसे व्यवस्थित रूप से मिली है। इसी को शिक्षा कहते हैं।

यह शिक्षा हमारे देश में बिलकुल नहीं दी जाती। यहाँ महत्त्वपूर्ण है परीक्षा में अच्छे नंबर लाना। अर्थात् हमारी शिक्षा और उच्च शिक्षा कहने को ही शिक्षा है। वास्तव में वह आदि से अंत तक केवल पैसे बनाने की प्रेरणा से ओत-प्रोत है। यूजीसी का स्थान कौन सी संस्था लेगी यह तय करने से पहले हमें उच्च-शिक्षा के मानदंड स्थापित करने होंगे। साथ ही, इसकी गारंटी भी कि उच्च-शिक्षित का अर्थ केवल कागजी प्रमाणपत्र नहीं, बल्कि योग्यता होनी चाहिए। यदि ऐसा करना सुनिश्चित न किया जा सके तो अच्छा हो कि नौकरी या कहीं प्रवेश लेने आदि के लिए डिग्री की अनिवार्यता ही खत्म कर दी जाए। आखिर, अधिकांश बड़ी सरकारी नौकरियों और मेडिकल, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट के प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रवेश लेने के लिए प्रतियोगी परीक्षायें देनी ही पड़ती है। यह परोक्ष रूप से उस माध्यमिक या ग्रेजुएट डिग्री को अमान्य करना ही है, जिसके अंक या ग्रेड पर भरोसा नहीं किया जाता। ऐसे में किसी भी नौकरी के लिए डिग्री की अनिवार्यता खत्म कर देनी चाहिए। इससे अनावश्यक रूप से कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में भीड़ खत्म होगी।

हमें उच्च शिक्षा ही नहीं, बल्कि संपूर्ण शिक्षा की चिंता इसी दृष्टि से करनी चाहिए। हम अपने देश में शिक्षित, उच्च-शिक्षित और विद्वान् का वास्तविक अर्थ पुनर्स्थापित करें। यह तभी होगा जब शिक्षा पर हावी भौतिकवादी दृष्टि से छुटकारा पाया जाएगा। मनुष्य केवल शरीर नहीं है। उसके मन, आत्मा और चेतना भी हैं। इन सभी पक्षों के समुचित विकास की चिंता शिक्षा ही करती है। अतः शिक्षा, डिग्री और रोजगार को अलग-अलग प्रवर्ग में रखकर देखना, समझना आरंभ करें। हमारी कई सामाजिक व्याधियों का उपचार तभी संभव है। इस जरूरी कार्य से बचकर हम एक-दूसरे को भुलावा तो दे सकते हैं, विश्व में अपना सम्मानजनक स्थान कभी प्राप्त नहीं कर सकते। विश्वविद्यालय सर्वोच्च ज्ञान-केंद्र होते हैं। इस अर्थ को भटकाते हुए मात्र कागजी डिग्री वितरण, संभावित नौकरी के लिए युवा प्रमाणित करना, हॉस्टल जैसी सुविधाओं को कोचिंग धर्मशालाओं में बदल देना अथवा राजनीतिक प्रचार का अड्डा बनाना-इन सबके लिए विश्वविद्यालय नहीं होता। न होना चाहिए। यूजीसी का पुनर्गठन करते हुए इन सभी बिंदुओं पर विचार करना होगा।

श्री अरविंद ने कहा था- किसी भी महान् देश का बौद्धिक पतन सदैव तीन गुणों के क्षरण से आरंभ होता है। उन्होंने ये तीन गुण बताए थे-विवेकपूर्ण विचार करने की क्षमता, तुलना व विभेद करने की क्षमता, तथा अभिव्यक्ति की क्षमता। ये क्षमताएं भाषा, महान् साहित्य, संसार भर के शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन से ही आती हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में उन ग्रंथों के नाम तक लुप्त हो गए हैं, अध्ययन-मनन तो दूर रहा!

देश को केवल इंजीनियर, डॉक्टर, प्रबंधक ही नहीं, बल्कि महान् चिंतक, विद्वान्, दृष्टा भी चाहिए। अभी भारतीय युवा मुख्यतः तकनीकी, प्रशासनिक कार्य करने वाले भर बन रहे हैं। चारों तरफ विश्वविद्यालय के नाम पर केवल पोलिटेक्निक या कोचिंग जैसे स्थान बढ़ रहे हैं। जबकि सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक समस्याओं की समझ और समाधान के लिए अत्यंत गहरे ज्ञान और आत्म-प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यह कौन करेगा? ❑

(लेखक वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

उच्च शिक्षा का कायाकल्प जरूरी

भारतीय शिक्षा व्यवस्था, खास तौर से उच्च शिक्षा और इसकी संस्थाओं-चाहे वह यूजीसी, एआइसीटीई, एनसीटीई या विभिन्न विश्वविद्यालय और अन्य उच्च शिक्षा संस्थान हों इनकी जो सबसे बड़ी समस्या है उस पर कमेटी एक तरह से खामोश रही है। यह समस्या है इन संस्थाओं में राजनेताओं और नौकरशाहों का हस्तक्षेप। पूरी दुनिया में जो भी देश शिक्षा की दृष्टि से उन्नत हैं या जहाँ के शिक्षा संस्थान विश्व में परचम लहरा रहे हैं वहाँ शिक्षा व्यवस्था अपेक्षाकृत स्वायत्त और स्वतंत्र है। ऐसा नहीं कि वहाँ की सरकारों की उन पर कोई नजर नहीं, लेकिन सरकार या नौकरशाहों की भूमिका उन देशों में एक समन्वयक, प्रोमोटर या सुपरवाइजर की होती है, नियंत्रक की नहीं।

❑ **डॉ. निरंजन कुमार**

उच्च शिक्षा और शोध किसी राष्ट्र के विकास और प्रगति की रीढ़ होते हैं। यह अनायास नहीं है कि दुनिया के सभी विकसित राष्ट्रों में उच्च शिक्षा को लेकर सरकारें और नियामक संस्थायें अत्यंत सजग हैं। दुर्भाग्य से भारत में उच्च शिक्षा की नियामक एजेंसी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) और विभिन्न सरकारों का रवैया उच्च शिक्षा को लेकर बहुत उत्साहजनक नहीं रहा है। मानव संसाधन मंत्रालय की एक कमेटी ने अपनी एक हालिया रिपोर्ट में यूजीसी पर गंभीर सवाल खड़े किए हैं। यूजीसी के पूर्व अध्यक्ष हरि गौतम की अध्यक्षता में गठित कमेटी ने इस संस्था को भंग कर इसकी जगह एक राष्ट्रीय उच्च शिक्षा प्राधिकरण (नेशनल हायर एजूकेशन अथॉरिटी) के गठन की सिफारिश की है। यूजीसी ने उच्च शिक्षा के विकास का अपना दायित्व कहाँ तक संभाला है? क्या हैं भारतीय उच्च शिक्षा की समस्यायें? नई सिफारिशें और प्रस्तावित नियामक संस्था इसके समाधान में कहाँ तक सफल हो पाएंगी? 1956 में संसद द्वारा एक कानून पास कर यूजीसी का गठन किया गया जिसका प्रमुख कार्य उच्च शिक्षा का समन्वय करना, इसके स्तर को बनाए रखना, विकास की निगरानी और उच्च शिक्षा को सुधारने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को सलाह देना था। एक अर्थ में यूजीसी ने अपनी जिम्मेदारी को बखूबी निभाया। 1956 में करीब 30 विश्वविद्यालयों से बढ़कर आज देश में लगभग सात सौ विश्वविद्यालय हैं। उसी तरह कॉलेजों की संख्या में भी जबरदस्त बढ़ोतरी हुई है। आज देश में लगभग 40 हजार कॉलेज हैं। दुर्भाग्यवश इस संख्यात्मक विकास के साथ गुणात्मक विकास वैसा कदमताल नहीं कर पाया। जेएनयू, दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे कुछ विश्वविद्यालयों या इसी तरह कुछ नामी -गिरामी कॉलेजों को छोड़ दें तो गुणवत्ता के धरातल पर स्थिति निराशाजनक ही दिखाई पड़ती है। दुनिया के नक्शे में भारतीय उच्च शिक्षा संस्थान एक तरह से गायब ही हैं। इस रूप में हरि गौतम कमेटी ने सही ही कहा है कि यूजीसी शिक्षा के क्षेत्र में सामने आ रही जटिलताओं से निपटने में भी अक्षम साबित हुई है। कमेटी ने उच्च शिक्षा की कुछ समस्याओं की ओर संकेत करते हुए अपनी सिफारिशें दी हैं।

कमेटी की एक महत्त्वपूर्ण सिफारिश है यूजीसी, इसके अध्यक्ष और अन्य उच्च पदाधिकारियों की जवाबदेही तय की जाए। इसके लिए तीन साल और फिर पाँच साल के बाद उनके कामकाज की समीक्षा करने की अनुशंषा की गई है। यह अपने आप में एक दूरगामी कदम होगा,

क्योंकि अपने यहाँ अधिनियमों द्वारा बनाई गई संस्थाओं और उनके प्राधिकारियों के कामकाज और निष्पादन की शायद ही कभी इस तरह की समीक्षा की जाती हो। यूजीसी के अधिकारियों के कामकाज की हालत क्या है इसका खुलासा दो-तीन साल पुरानी एक घटना से लग सकता है। रिसर्च प्रोजेक्ट के लिए एक शिक्षक को अपने लिए लैपटॉप खरीदना था। उसने अपने प्रोजेक्ट में यूजीसी से कंप्यूटर खरीदने की माँग की थी। शिक्षक ने अपने आवेदन पत्र में यह सोचकर कंप्यूटर शब्द लिखा था कि कंप्यूटर का अर्थ डेस्कटॉप, लैपटॉप से लेकर टैबलेट कंप्यूटर भी होता है। लगभग एक साल इसी खतो-किताबत में निकल गए कि कंप्यूटर का अर्थ क्या सिर्फ डेस्कटॉप है या इसका अर्थ लैपटॉप भी होता है? जबकि यह बात तीसरी-चौथी क्लास की किताबों में भी पढ़ाई जाती है। यूजीसी के विभिन्न अधिकारी यहां तक कि सेक्रेटरी भी इस अत्यंत कठिन सवाल का जवाब नहीं दे पाए और उस शिक्षक को हारकर डेस्कटॉप ही खरीदना पड़ा, जबकि कंप्यूटर लेकर उसे देश के विभिन्न जगहों में फील्ड वर्क के लिए जाना जरूरी था, ताकि अपने शोध से संबंधित वहाँ के विभिन्न आँकड़े उसमें फीड कर सके। अपने अनेक पत्रों में उसने यह जरूरत साफ-साफ यूजीसी के उच्च अधिकारियों को समझाई थी कि उसे लैपटॉप खरीदने की अनुमति दी जाए, लेकिन यूजीसी के कानों पर जूं नहीं रेंगी। संभवत: इसी परिप्रेक्ष्य में रिपोर्ट ने व्यापारियों, होटल मालिकों और कॉलेज के रीडर्स को भी इस संस्था का सदस्य बनाए जाने पर सवाल खड़ा किया है। व्यापारियों, होटल मालिकों आदि को यूजीसी का सदस्य बनाना नि:संदेह एक शोचनीय स्थिति है, जिसका विरोध किया जाना चाहिए, लेकिन कॉलेज के रीडर को सदस्य बनाना कोई आपत्तिजनक बात नहीं है, बल्कि इसका स्वागत होना चाहिए। कॉलेज संबंधी नीतियाँ बनाने में यह सहायक ही सिद्ध होगा। यह जरूर है कि इसके लिए योग्यतम कॉलेज शिक्षकों का चयन हो।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था, खास तौर से उच्च शिक्षा और इसकी संस्थाओं-चाहे वह यूजीसी, एआइसीटीई, एनसीटीई या विभिन्न विश्वविद्यालय और अन्य उच्च शिक्षा संस्थान हों इनकी जो सबसे बड़ी समस्या है उस पर कमेटी एक तरह से खामोश रही है। यह समस्या है इन संस्थाओं में राजनेताओं और नौकरशाहों का हस्तक्षेप। पूरी दुनिया में जो भी देश शिक्षा की दृष्टि से उन्नत हैं या जहाँ के शिक्षा संस्थान विश्व में परचम लहरा रहे हैं वहाँ शिक्षा व्यवस्था अपेक्षाकृत स्वायत्त और स्वतंत्र है। ऐसा नहीं कि वहाँ की सरकारों की उन पर कोई नजर नहीं, लेकिन सरकार या नौकरशाहों की भूमिका उन देशों में एक समन्वयक, प्रोमोटर या सुपरवाइजर की होती है, नियंत्रक की नहीं। यह बताने के जरूरत नहीं कि कठघरे में केंद्र से लेकर राज्यों तक सभी पार्टियों की सरकारें हैं। रिपोर्ट की इस बात का खुलासा नहीं हुआ है कि यूजीसी के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति की प्रक्रिया के लिए क्या सिफारिशें हैं। यहाँ मेरा सुझाव है कि इसके लिए एक कमेटी होनी चाहिए जिसमें प्रधानमंत्री, लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष और सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश और एक प्रतिष्ठित शिक्षाविद् हों। निष्पक्ष और विश्वसनीय तरीके से आयोग का गठन हो और आयोग किसी भी राजनीतिक दबाव और नियंत्रण से मुक्त रहकर कार्य करे। रिपोर्ट की एक महत्त्वपूर्ण अनुशंषा शोध में गंभीर विद्यार्थियों के ही प्रवेश को सुनिश्चित करने के लिए है कि पीएचडी में एडमीशन के लिए राष्ट्रीय स्तर की एक परीक्षा ली जाए। इससे एक तरफ विद्यार्थियों को पीएचडी के एडमीशन टेस्ट के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों के चक्कर नहीं लगाने पड़ेंगे। दूसरे, इससे उनके समय, धन और ऊर्जा की भी बचत होगी। तीसरे, प्रवेश परीक्षा के उच्च स्तर के कारण अच्छे विद्यार्थियों का प्रवेश ही सुनिश्चित हो पाएगा। यहाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों को अपने छात्रों के लिए 50 प्रतिशत सीट सुरक्षित रखने की छूट दी जा सकती है, राष्ट्रीय स्तर की इसी परीक्षा से उनके भी गुजरने से गुणवत्ता ज्यादा प्रभावित नहीं होगी।

अब चाहे यूजीसी को भंग कर एक नई संस्था बनाई जाए या वर्तमान संगठन में ही परिवर्तन किए जाएँ, शिक्षा, जो सभी रोजगारों और सभी विकासों की जननी है, को लेकर सरकारें न चेतीं तो भारतवर्ष की गिनती एक उन्नत राष्ट्र के रूप में शायद ही कभी हो पाए। ❑

(लेखक दिल्ली विवि में प्रोफेसर हैं)

शिक्षा को ऐसी संस्कार-प्रक्रिया माना गया है जो जीवन पर्यन्त चलती है और मनुष्य को सच्चे अर्थों में जीवन का महत्त्व बताती है तथा उसे मानवीय बनाती है। इस नाते शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को संस्कारवान बनाना और उसका चहुँमुखी विकास करना होता है। इसलिये माना जाता है कि जिस देश में शिक्षा का ढाँचा जितना मजबूत होगा वहाँ संस्कृति भी उतनी ही सुदृढ़ एवं समुन्नत होगी। तप, त्याग, अहिंसा, अतिथि देवो भवः, वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे उदात्त मूल्यों पर ही हमारी शिक्षा तथा संस्कृति दोनों टिके हैं।

शिक्षा का संस्कृति के विकास में योगदान

❑ डॉ. शिव शरण कौशिक

प्रत्येक राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति वहाँ की शिक्षा पद्धति पर निर्भर करती है। हमारे देश में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है तथा वर्तमान में विभिन्न संवर्गों में शिक्षा का गुणात्मक तथा संख्यात्मक प्रसार भी हो रहा है । संसार की अनेक प्राचीनतम संस्कृतियाँ, आक्रमणों एवं अवरोधों का शिकार होती रही हैं, भारतीय संस्कृति भी इनसे अछूती नहीं रही, परन्तु यह अपनी कुछ मौलिक विशेषताओं तथा उनमें समयानुकूल परिष्कार के उदारभाव के कारण विश्व में बेजोड़ रही है। यवन, शक, हूण, कुषाण, तुर्क, अफगान, मुगल तथा अंग्रेजी जाति-साम्राज्यों ने अपने शासन से हमारी संस्कृति को प्रभावित किया, लेकिन जिस प्रकार अनेक छोटी-छोटी नदियाँ व नाले, गंगा में मिलकर उसे समृद्ध कर स्वयं गंगा के ही अंग बन जाते हैं वैसे ही तमाम संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति में एकाकार होती चली गई।

किसी भी देश की संस्कृति के मूल तत्त्व धर्म, दर्शन, चिन्तन, साहित्य, संगीत, स्थापत्य कला, भाषा, रहन-सहन, खान-पान, उत्सव-त्योहार, स्वागत-सत्कार एवं शिक्षा आदि हैं। हमारी संस्कृति ने प्राचीनकाल से ही शिक्षा के मौलिक संस्थानों की स्थापना के साथ मानवीय गुणों का विकास कर अपने को विकासमान बनाया है। हमारी संस्कृति ठहरे पानी की तरह जड़ नहीं बल्कि बहते स्वच्छ पानी की तरह गतिशील है। यह बहुत सी छोटी-छोटी संस्कृतियों का संकुल है। शिक्षा के प्रसार से ही हम सांस्कृतिक रूप में बहुलतावादी बने रहे हैं।

शिक्षा शब्द का उद्भव लेटिन शब्द 'एज्यूकेटम' से हुआ है जिसका तात्पर्य है 'टू ड्रा आउट' अर्थात बाहर निकालना'। हमारे अन्तर्निहित गुण शिक्षा के माध्यम से ही विकसित होते हैं, प्राचीनकाल में जब शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत नहीं था तो मनुष्य का जीवन पशुवत था, ज्यों-ज्यों शिक्षा का विकास हुआ उससे व्यक्ति के अन्तर्निहित गुणों के प्रसार को भी पर्याप्त स्थान मिला।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज में रहता है और सामूहिक रूप से ही अपनी समृद्धि और उन्नति के लिये प्रयत्न करता है। इसलिये समूह में रहते हुए अपने साथ तथा अन्य व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार करे, इसके लिए हमारे समाज ने राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, साहित्य,

इतिहास जैसे समाज विज्ञानों का विकास किया। यह शिक्षा की ही देन है कि हमने अपने संस्कारों एवं मूल्यों की रक्षा भी की तथा इन्हें समृद्ध भी बनाया है। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही शारीरिक, मानसिक, आत्मिक एवं नैतिक शक्ति के सामञ्जस्यपूर्ण विकास को मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य माना गया है, यही हमारी शिक्षा की सर्वांगीण विकास की अवधारणा है जिसे शिक्षा नीति में, शिक्षा प्रणाली में शामिल रखने की बात होती रही है। दुनिया की दूसरी संस्कृतियों की बात करें तो हम जानेंगे कि स्पार्टा में शारीरिक रूप से कमजोर बच्चे को मार दिया जाता था। एथेन्स की संस्कृति में केवल मानसिक विकास पर अधिक बल दिया जाता था। रोम, मिश्र, काबुल आदि की प्राचीन संस्कृतियों में भी अधूरापन दिखता है, यूरोप की आधुनिक संस्कृति भी आत्मिक विकास के अभाव में अधूरी सी लगती है, इसलिये भारतीय संस्कृति के विकास में आरम्भ से ही विभिन्न विद्याओं, शास्त्रों, नालन्दा एवं तक्षशिला जैसे शिक्षण संस्थानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति के उपासकों ने शिक्षा पद्धति के गुण-दोषों पर समय-समय पर चिन्तन कर इसके गुणात्मक विकास पर भी बल दिया है।

लेकिन आज जब हम देखते हैं कि चारों तरफ वैश्वीकरण का प्रभाव है, बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने हमारी संस्कृति की चूलों को हिला दिया है, हमारा सर्व धर्म सद्भाव वाला समाजवादी ढाँचा चरमराने लगा है। जाति-धर्म पर आधारित राजनीति का विकृत चेहरा हमारी सांस्कृतिक विकास धारा को अवरुद्ध कर रहा है। जनबल और धनबल से ही नीतियाँ तय की जा रही हैं। तब यह प्रांसगिक है कि आज शिक्षा के पाठ्यक्रमों में, शिक्षानीति में तथा शिक्षा-नियोजन में हमारी संस्कृति के उन तमाम मूल्यों को समाविष्ट किया जाना चाहिए जो हमारे समाज को तथा हमारे देश को पुनः संस्कारित करे और यह कार्य शिक्षा के गुणात्मक सुधार से ही संभव है क्योंकि भारतीय मनीषियों, चिन्तकों और शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा को मनुष्य के जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली तथा व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों के सर्वांगीण विकास का उपक्रम माना है। शिक्षा को ऐसी संस्कार-प्रक्रिया माना गया है जो जीवन पर्यन्त चलती है और मनुष्य को सच्चे अर्थों में जीवन का महत्त्व बताती है तथा उसे मानवीय बनाती है। इस नाते शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को संस्कारवान बनाना और उसका चहुँमुखी विकास करना होता है। इसलिये माना जाता है कि जिस देश में शिक्षा का ढाँचा जितना मजबूत होगा वहाँ संस्कृति भी उतनी ही सुदृढ़ एवं समुन्नत होगी। तप, त्याग, अहिंसा, अतिथिदेवो भव, वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे उदात्त मूल्यों पर ही हमारी शिक्षा तथा संस्कृति दोनों टिके हैं। हमारी संस्कृति में रामकथा भी है जिसे वाल्मीकि तथा तुलसीदास ने भारतीय जनमानस में साँसों की तरह बैठाया है राम के लोकनायकत्व और आदर्श से हम सदैव प्रेरणा पाते हैं और रावणत्व का पूरी तरह से प्रतिकार करते रहे हैं। तो दूसरी ओर श्रवणकुमार की कथा भी हमारी सांस्कृतिक जमीन से ही उपजी है, जिसमें माता-पिता के प्रति संतान का प्रतिबद्ध होना एक बड़ा सामाजिक मूल्य है।

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है- 'सा विद्या या विमुक्तये'। अर्थात् विद्या वह जो व्यक्ति को मुक्ति दिलाती हो। रूढ़ियों से मुक्ति, अन्धविश्वासों से मुक्ति, अज्ञान से मुक्ति और साथ ही अकर्मण्यता से मुक्ति, भेदभाव से मुक्ति, ऊँच-नीच से मुक्ति। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा से देश का हर व्यक्ति, हर नागरिक ज्ञानवान, बुद्धिमान, विवेकवान बनता है और अपने स्वयं के प्रति, समाज के प्रति तथा राष्ट्र के प्रति निष्ठावान बनता है। शिक्षा ही सबको समानता का अधिकार दिलाती है। अगर आज हम शिक्षा के इन मौलिक उद्देश्यों के प्रति कुछ गिरावट देख रहे हैं तो इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि हम अपने सांस्कृतिक इतिहास की उपेक्षा कर रहे हैं। हम आज अपनी संस्कृति की उस प्रमुख विशेषता में कुछ कमी पा रहे हैं जिसे डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् 'मानव के उद्बोधन का मार्ग प्रशस्त करने वाली मानते थे। मनुष्य के 'उद्बोधन' अर्थात् उसके अभिव्यक्त होने, उसके विकसित होने का मार्ग हमारी संस्कृति और शिक्षा दोनों समान रूप से प्रशस्त करती हैं। जिन बुरे विचारों और कुसंस्कारों पर मानव को विजय प्राप्त कराती है वही सच्ची और अच्छी शिक्षा का भी उद्देश्य होता है। शिक्षा से भी नागरिकों को सभ्य और सुसंस्कृत ही बनाया जाता है, अर्थात् किसी देश और उसके नागरिकों के विकास में शिक्षा और संस्कृति का अन्योन्याश्रित योगदान होता है।

दुनिया के बेतहाशा भौतिक और वैज्ञानिक विकास में यद्यपि शिक्षा की ही भूमिका है किन्तु वह सारा भौतिक और वैज्ञानिक विकास मनुष्य के कल्याण के लिए है या उसके विनाश के लिए इसका बोध सांस्कृतिक शिक्षा के बिना नहीं आ सकता, इसीलिए साहित्य, कलायें तथा जीवन की अन्य ललित भावनायें संस्कृति का ही हिस्सा होती हैं जो हमें अमानवीय, असहिष्णु और अराजक होने से बचाती हैं। ज्ञान के अन्य विषयों के बीच साहित्य के शिक्षण का महत्त्व ही संस्कृति के शिक्षण के रूप में है हम साहित्य की शिक्षा दे रहे हैं अर्थात् हम संस्कृति की शिक्षा दे रहे हैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा कि ''साहित्य से मनुष्य भाव की रक्षा होती है'' अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि डी.एच. लॉरेन्स ने भी शिक्षा और संस्कृति की बुनियाद के रूप में साहित्य को रखते हुए शिक्षा और संस्कृति के विकास में इसका योगदान प्रतिपादित किया है।

भारतीय समाज पर रामचरितमानस का इतना व्यापक प्रभाव इसीलिए है क्योंकि वह अकेली रचना भारतीय सांस्कृतिक वातावरण और तत्कालीन व्यवस्था को जनमानस के सामने रख पाती है। कबीर, सूर, मीरा के पदों की भी हमारे लिये वही उपयोगिता है। शिक्षा की एक बहुत बड़ी सार्थकता इस बात से है कि वह इसी जातीय मस्तिष्क की सांस्कृतिक धरोहर को न केवल सुरक्षित रख सके बल्कि नये संदर्भों में उसकी प्राणवत्ता को अक्षुण्ण और सुलभ बनाये रखने का यत्न भी करे।

यहाँ मैं एक बात का विशेषतौर पर उल्लेख करना चाहूँगा कि हमारी भारतीय

संस्कृति के कुछ कमजोर पक्ष भी रहे हैं जिनसे हम केवल और केवल शिक्षा से, वैज्ञानिक सोच से ही मुक्ति पा सकते हैं जैसे 'अवतारवाद'। हमारी भारतीय धारणा में ऐसी अनेक बाते हैं जिनसे हमारी सांस्कृतिक मनोभूमि की निर्मिति हुई है और उस निर्मिति में यह प्रवृत्ति रही कि:-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

अर्थात् जब-जब हमारे ऊपर किसी भी प्रकार की कोई विपत्ति आयेगी तो भगवान् स्वयं अवतार लेंगे और हमारे कष्टों का निवारण करेंगे। यह स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने घोषणा की है। इसलिए हमें कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। हम चाहे कुछ भी कहें लेकिन यह हमारी सांस्कृतिक मनोभूमि का एक अभिन्न हिस्सा रही है और इतिहास में इसके अनेक उदाहरण भी मिलते हैं। जब महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया और मन्दिर के वैभव को लूटा तो वहाँ परिसर में इतने लोग उपस्थित थे कि अगर वे गजनवी की सेना पर गिर पड़ते तो सोमनाथ को ध्वंस से बचा सकते थे। किन्तु वे लोग तो आश्वस्त थे कि सोमनाथ का ज्योतिर्लिंग अग्निरूप में प्रकट होकर गजनवी की सेना का संहार कर देगा। लेकिन परिणाम हमारे सामने हैं। यह अवतारवाद हमारी धमनियों में इस कदर समा गया है कि इसने गीता के विशुद्ध कर्मयोग को भी अन्धभक्ति और अन्धविश्वास में बदल दिया है। इसलिए हमें आस्था-विश्वास और अन्ध श्रद्धा में फर्क करना शिक्षा ही सिखाती है। शिक्षा ही जीवन की सच्चाइयों से हमें रूबरू भी कराती है और उनका सामना करने के लिए सक्षम भी बनाती है। इसलिए सांस्कृतिक विकास के रथ का पहिया शिक्षा ही है।

आज दुनिया वैश्वीकरण के दौर में है और जहाँ संस्कृतियों का परस्पर महामिलन या सम्मिलन हमारे सामने है, यह सांस्कृतिक मिश्रण अच्छा है या बुरा यह तो समय तय करेगा किन्तु यह अवश्य है कि शिक्षा के प्रसार से कोई संस्कृति परम्परा होने से बचती है। परम्परा रूढ़ हो सकती है जबकि संस्कृति परिवर्तनशील और विकासमान होती है। हम अपनी राजनीतिक स्वाधीनता, आर्थिक विकास के मॉडल और सामाजिक समता के सिद्धान्तों की मन्जिल भी अपनी सांस्कृतिक स्वायत्तता पर खड़ा करते हैं। आज समसामयिक समाज में दो विपरीत प्रवत्तियाँ दिखाई पड़ रही हैं। एक ओर वैश्वीकरण के कारण पृथ्वी की दूरियाँ सिकुड़ रही हैं मानव जाति एकजुट एक मानवता के आदर्श की ओर बढ़ती दिखाई दे रही है। वेशभूषा, खान-पान, मनोरंजन आदि के क्षेत्र में परम्परागत सीमायें टूट रही हैं और एक नया रुचि-वैविध्य लोक प्रिय होता जा रहा है जो 'अपने' और 'पराये' के बारे में अधिक चिन्तित नहीं है। कलाओं पर दूसरी संस्कृतियों का प्रभाव व्यापक रूप से देखा जा सकता हैं। दूसरी ओर 'जड़ों' की तलाश या 'बुनियाद की खोज' का उपक्रम भी बड़े शक्तिशाली ढंग से उभरा है। आज हम इस उभरती बौद्धिक विश्व संस्कृति का हिस्साभर बन कर रह जाते हैं या हमारी लोकप्रिय जन संस्कृति का मजबूत आधार तैयार कर पाते हैं ? यह सब हमारी शिक्षा नीति और सांस्कृतिक नीति पर ही निर्भर करेगा। हालांकि यह कोई नई बात नहीं है। साधनों के सीमित होने और शिक्षा के परम्परागत माध्यमों के कारण पहले भी जन संस्कृतियाँ एक दूसरे में संचरित होकर प्रभावित होती रही हैं।

आज शिक्षा के बारे में हमारी कमोबेश यही राय बन गई है कि वह रोजगार दिलाने का जरिया मात्र है। सच्चाई तो यह है कि आज हम शिक्षा के इस एकमात्र उद्देश्य को पाने में भी असफल रहे हैं। लेकिन एक सच यह भी है कि शिक्षा ही सदियों से सामाजिक परिवर्तन का एक मात्र हथियार रही है, यही व्यक्तित्व निर्माण का कारगार साधन है, और सांस्कृतिक विकास की धुरी है। हाँ, यह अवश्य है कि देश में बढ़ती अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली और अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों का फैलता जाल हमारी भारतीय संस्कृति के विकास में न केवल बाधक बन रहा है बल्कि उसे अवरुद्ध भी कर रहा है क्योंकि किसी भी देश की अपनी भाषा दक्षता ही उसकी सांस्कृतिक पहचान को बचाये रख सकती है। हम कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, प्रेमचन्द आदि को हिन्दी जाने बगैर कैसे समझ सकते हैं। क्योंकि हमारी अपनी भाषा से हमारी सांस्कृतिक विरासत का गहरा संबंध होता है।

नवजागरण काल और आधुनिक काल में भी हम पाते हैं कि मध्य काल की तमाम रूढ़ियों पर हमने जो काबू पाया था उसके पीछे हमारी नवीन और आधुनिक शिक्षा का ही योगदान रहा है। या यों कहें कि किसी भी समाज के अंधकार युग को खत्म करने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यद्यपि पहले हमारे यहाँ धर्मशास्त्रों, पुराणों, तथा प्राचीनतम भाषाओं की शिक्षा दी जाती थी लेकिन वैज्ञानिक विकास के साथ ही आज हम गणित, भूगोल, विज्ञान, भौतिक शास्त्र, भूगर्भशास्त्र, अन्तरिक्ष विज्ञान, सूचना एवं तकनीक जैसे अधुनातन विषयों का अध्ययन कर रहे हैं जो समाज के लिये उपयोगी हैं तथा जिसके द्वारा हम निरर्थक को पीछे छोड़ पायेंगे। हमारे यहाँ अभी शिक्षा के मूल लक्ष्यों में जीवन मूल्यों की रक्षा एवं युगानुरूप नए जीवन मूल्यों की स्थापना की अवधारणा प्रवहमान है और इन उद्देश्यों की पूर्ति में, शिक्षा सम्बन्धी सोच के क्रियान्वयन का काफी कुछ दायित्व शिक्षक पर है। यदि शिक्षा के क्षेत्र में समुचित और सही दिशा का विकास होगा तो समूचे समाज का विकास होगा। इसलिये हमारे शिक्षा के सारे कार्यक्रम वायवीय न होकर ठोस आत्मसंघर्ष और आत्मचिन्तन वाले होने चाहिए। परिवर्तन की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया में शिक्षा की सक्रिय गतिशीलता रहनी आवश्यक है। इस संदर्भ में मैं कहना चाहूँगा कि शिक्षा का उद्देश्य वर्तमान में बालकों में नैतिकता एवं मानवीयता का विकास करना ही प्रमुखता से होना चाहिए क्योंकि -

वक्त मुश्किल है जरा सरल बनिये
प्यास पथरा गई है जरा तरल बनिये
जिसको पीने से श्याम मिलता हो
आप मीरा का वो गरल बनिये। ❑

(व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा)

'बाबा साहब अम्बेडकर आज के परिप्रेक्ष्य में'

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ, बडौदा (गुजरात) द्वारा भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी की 125 वीं जन्मजयंती के पावन अवसर पर श्री मूलचन्द राणाजी का 'प्रखर राष्ट्रभक्त: डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर- आज के परिप्रेक्ष्य में' विषय आधारित व्याख्यान का आयोजन किया गया।

व्याख्यान के प्रारंभ में ही श्री मूलचन्द राणा ने डॉ. अम्बेडकर जी के बडौदा नरेश श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड के साथ संबंध का स्मरण किया। बडौदा नरेश से उनको उच्च अभ्यास के लिए इंग्लैण्ड जाने के लिए मिली आर्थिक सहायता का उल्लेख किया। इस शहर में उनको सुखद और दु:खद दोनों अनुभव मिले। यहीं इसी भूमि में अम्बेडकर जी ने अस्पृश्यता नाम के समाज के दूषण को निर्मूल करने का प्रण लिया।

बहुचर्चित आरक्षण व्यवस्था के बारे में विशद विश्लेषण करते हुए श्री मूलचंद राणाजी ने कहा कि संविधान में जो लिखा है और हमारी समझ में जो आता है उस अनुसार 'जो बिछड़े हुए हैं उनको सहायता देकर आगे लाना यही आरक्षण है।' समाज में ऐसे बिछड़े हुए लोगों में से अस्पृश्यों को एस.सी. में समाया, आदिवासियों को एस.टी. में समाया। कॉलम 340 में लिखा है कि सामाजिक और आर्थिक बिछड़े हुए लोगों के लिए भी कुछ करना चाहिए। इस हेतु कमिशन का गठन करके सुझाव के अनुसार कुछ करने की बात कही। कॉलम 46 में कहा कि जाति और धर्म से परे होकर समाज के तमाम निर्बल वर्ग के लिए कुछ प्रावधान किया जाये। कॉलम 335 में अम्बेडकरजी ने कहा है कि आरक्षण अवश्य होना चाहिए लेकिन साथ में कार्यदक्षता का ध्यान भी करना चाहिए। देश के हित में आरक्षण की वजह से कार्यदक्षता पर विपरीत असर न हो उसकी चिंता भी की है। कॉलम 332 के अनुसार शैक्षणिक संस्थाओं में और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की निश्चित अवधि नहीं होगी लेकिन राजकीय बैठकों में आरक्षण के लिए 10 साल की अवधि दी है। अम्बेडकर जी सोचते थे कि दस साल में समाज में सुधार आयेगा, समरसता बनेगी।

1932 में ऐटनबरो ने कहा कि असेम्बली में अपने प्रतिनिधि चुनने के लिए बिछड़े लोगों को विशेष मताधिकार होना चाहिए। इस बात का गाँधी जी ने विरोध किया। उनको यह बात बिलकुल स्वीकार नहीं थी। तब गाँधीजी पुणे की यरवाडा जेल में कैद थे। वहाँ उन्होंने अनशन शुरु किया। गाँधी जी के उपवास के दिन बढ़ते चले गये जिससे पूरे देश में अशान्ति का माहौल पैदा हुआ। महात्मा जी की जान को खतरा पैदा हुआ। ऐसी नाजुक स्थिति में अम्बेडकर जी ने विशेष मताधिकार की जिद छोड़ दी। यह देश के लिए बहुत आवश्यक था। 24 सितम्बर 1932 के दिन गाँधीजी ने अनशन का अंत किया। तब राष्ट्रहित में गाँधीजी को बचाने के लिए अम्बेडकरजी ने राष्ट्र के प्रति अपनी निष्ठा की प्रतीति पूरे देश को करवाई।

महाराष्ट्र में येबला परिषद में अम्बेडकरजी ने यह घोषणा की कि 'मैं हिन्दू जन्मा हूँ पर हिन्दू नहीं मरूँगा।' 14 अक्टूबर 1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म अंगीकार किया। धर्मपरिवर्तन के लिए उन्होंने 21 साल लगाये, यही सोचकर कि हिन्दू धर्म में परिवर्तन आयेगा, सुधार आयेगा। हैदराबाद के निजाम ने अम्बेडकर जी को समस्त बिछड़े लोगों के साथ इस्लाम धर्म अंगीकार करने के लिए 400 करोड़ का आर्थिक पैकेज देने का लालच दिया था। ईसाई लोगों ने भी प्रलोभन दिये। उनकी नाराजगी हिन्दू धर्म की कुरीतियों से थी। किन्तु उन्होंने सोचा कि यदि लोग इस्लाम या ईसाई धर्म अंगीकार करेंगे तो यह राष्ट्र के हित में नहीं होगा। अम्बेडकरजी का यह प्रयास भी राष्ट्र के हित में ही था।

1991 में पूरे विश्व में उदारीकरण और वैश्वीकरण का माहौल था। डॉ. अम्बेडकर जी ने 1946 में अपनी पुस्तक 'The Problem of Rupee' में उदारीकरण का जिक्र किया है। तब उन्होंने चेतावनी दी थी कि वैश्वीकरण के साथ भारतीय रुपये का मूल्य बदलना नहीं चाहिये। गोल्ड सिद्धान्त उचित रहेगा किन्तु भारत में गोल्ड एक्सचेन्ज स्टेण्डर्ड थ्योरी ठीक नहीं था। वैश्वीकरण के हाल के माहौल में अम्बेडकर जी की 60 साल पहले दी हुई सलाह को हमारे राष्ट्रीय नेता भूल गये हैं जिसके बहुत सारे बुरे परिणाम आज राष्ट्र भुगत रहा है।

इस तरह अम्बेडकर जी के जीवन का समग्र कर्तृत्व राष्ट्र के हित में ही था। वह एक प्रखर राष्ट्रभक्त थे। मुझे आज महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ, बडौदा ने यहाँ आकर अपने कुछ विचार प्रस्तुत करने का अवसर दिया इसके लिए मैं सबका आभारी हूँ।

इस अवसर पर रा.स्व.संघ, गुजरात प्रांत कार्यवाह श्री यशवंत चौधरी उपस्थित रहे। शैक्षिक संघ के अध्यक्ष डॉ. विश्वजीत चक्रवर्ती ने अतिथियों का परिचय एवं स्वागत किया। अ.भा. राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय सचिव (उच्च शिक्षा संवर्ग) प्रो. प्रगनेश शाह ने शैक्षिक संघ का परिचय दिया और डॉ. श्वेता प्रजापति ने विषय प्रर्वतन किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. दीपेन्द्र जाडेजा ने किया।

रा.शि.संघ (राष्ट्रीय) केकड़ी (अजमेर) में सामाजिक समरसता कार्यक्रम सम्पन्न

विद्यालयों में शिक्षकों के पद रिक्त नहीं रहेंगे - प्रो. वासुदेव देवनानी

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) केकड़ी द्वारा आयोजित डॉ. भीमराव अम्बेडकर जयंती समारोह में राजस्थान के शिक्षा राज्य मंत्री प्रो. वासुदेव देवनानी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि पूर्ववर्ती सरकार की अदूरदर्शी नीति के कारण विद्यालय शिक्षक विहीन थे। मात्र इस एक वर्ष के कार्यकाल में ग्रामीण क्षेत्रों में विषयाध्यापक लगा दिये गये हैं। इस माह के अन्त तक सभी वर्गों की डी.पी.सी करके प्रधानाध्यापक, प्रधानाचार्य, जिला शिक्षा अधिकारियों की नियुक्ति के साथ विषयाध्यापकों की नियुक्ति कर दी जायेगी। शैक्षणिक स्तर सुधारने हेतु कक्षा 8 की वैकल्पिक व्यवस्था के बाद बोर्ड परीक्षा की जायेगी। इस वर्ष वैकल्पिक परीक्षा में बैठने वालों को स्थानीय परीक्षा नहीं देनी पड़ेगी। शिक्षामंत्री ने आँकड़े देकर बताया कि इस सत्र में 40 हजार से अधिक शिक्षकों को पदोन्नति दे दी जायेगी। केकड़ी विधायक श्री शत्रुघ्न गौतम ने शिक्षामंत्री से राज. माध्य. विद्यालय पायलेट को उच्च माध्यमिक विद्यालय में क्रमोन्नत करने व केकड़ी क्षेत्र के शिक्षकों की सभी समस्याओं का समाधान शीघ्र करते हुए पदोन्नत होने वाले शिक्षकों को नजदीकी स्थानों पर ही लगाने का भी आग्रह किया साथ ही केकड़ी विधान सभा क्षेत्र में सभी ग्राम पंचायत में बोर्ड परीक्षा केन्द्र खोलने की मांग की।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवनवृत एवं कार्यों पर प्रकाश डालते हुये मुख्य वक्ता हनुमान सिंह राठौड़ ने स्वतंत्रता से पूर्व दलितों की स्थिति बताते हुये महात्मा गाँधी के प्रयत्नों से आगे बढ़कर संविधान में दलितों के अधिकारों की रक्षा हेतु कार्य किया। उनके प्रयत्नों के कारण ही वर्तमान में दलितों की स्थिति में सुधार आया है। हनुमान सिंह राठौड़ ने दलितों के प्रति समाज द्वारा की जा रही अस्पृश्यता के कई उदाहरण देकर वर्तमान में सुधर रही स्थिति को आगे बढ़ाने का आह्वान किया। संगठनात्मक जानकारी देते हुये प्रदेश संगठन मंत्री महावीर प्रसाद सिंहल ने शिक्षामंत्री के प्रयत्नों को सराहनीय बताते हुये पिछली सरकार के अन्तर्गत शेष समस्याओं को संगठन के साथ वार्ताकर निराकरण की अपील की। इस अवसर पर केकड़ी क्षेत्र से सेवानिवृत्त हुये शिक्षकों का सम्मान शिक्षामंत्री तथा मंचासीन अतिथियों द्वारा शाल, श्रीफल, माल्यार्पण, प्रतीक चिह्न देकर किया गया। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड में नवनियुक्त सदस्य अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष बजरंग प्रसाद मजेजी का शिक्षामंत्री, विधायक, मुख्यवता ने स्वागत किया। कार्यक्रम का संचालन करते हुये बिरदीचंद वैष्णव ने संगठन द्वारा किये जा रहे प्रयत्नों एवं शिक्षकों की समस्याओं के निराकरण हेतु शिक्षामंत्री से आग्रह किया। अध्यक्ष भंवर सिंह राठौड़ ने स्वागत भाषण तथा उपशाखा अध्यक्ष महेश शर्मा ने अतिथियों का परिचय तथा उपशाखा मंत्री काशीराम विजय ने आभार व्यक्त किया।

शिक्षक संघ का प्रतिनिधि मंडल शिक्षा मंत्री श्री वासुदेव देवनानी से मिला

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का शिष्ट मंडल शिक्षा मंत्री श्री वासुदेव देवनानी से सिरोही जिले के प्रवास के अवसर शिक्षक संघ के जिला मंत्री सतीश शर्मा के नेतृत्व में मुलाकात की। शिष्ट मंडल में तहसील अध्यक्ष भगवान सिंह महावर, तहसील मंत्री ज्योतिर्मय शर्मा, जिला सभा अध्यक्ष डूंगर सिंह देवडा, जिला उपाध्यक्ष भूराराम चौधरी, प्रदेश महासमिति सदस्य प्रवीण शर्मा सम्मिलित थे। मंत्री महोदय को शिक्षकों की ज्वलन्त समस्याओं से अवगत कराते हुए सतीश शर्मा ने बताया कि शिक्षक संघ राष्ट्रीय सदैव शिक्षक, शिक्षार्थी एवं राष्ट्र हित के लिए कार्य करता है ऐसे में यदि विद्यालय का समय बढाया जाता हैं तो भीषण गर्मी की भरी दोपहर में अवकाश होते ही शिक्षक तो अपनी मोटरसाइकिल, ऑटो रिक्शा, टेक्सी अथवा बस में बैठ कर घर चला जायेगा परन्तु प्राथमिक कक्षाओं में पढने वाले नन्हें शिक्षार्थी एक दो किलोमीटर तक लू के थपेड़े खाते हुए पैदल धर जायेंगे तो बीमार पड़ने व नामांकन घटने की पूरी सभांवना रहेगी। क्योंकि सी बी एस ई की प्राइवेट स्कूलों की तरह सरकारी स्कूलों के बालक बालवाहिनी में पढ़ने नहीं आते।

तहसील अध्यक्ष भगवान सिंह महावर ने तहसील के सबसे बड़े विद्यालय दरबार स्कूल में स्टाफ की जबरदस्त कमी की ओर ध्यान दिलाया तथा तहसील मंत्री ज्योतिर्मय शर्मा ने वनवासी क्षेत्रों के विद्यालयों में बिजली एवं पानी की अनुपलब्धता के बारे में अवगत कराया।

जिला सभा अध्यक्ष डूंगर सिंह देवडा ने महिला पुरुष की पदोन्नति में समानता करने के लिए मंत्री जी का आभार प्रकट किया।

उपाध्यक्ष भूराराम चौधरी एवं प्रदेश महासमिति सदस्य प्रवीण शर्मा ने सोहार्द्रपूर्ण वार्ता करने एवं शिक्षक संघ राष्ट्रीय के शिष्ट मंडल को वार्ता के लिए समय देने के लिए मंत्रीजी को धन्यवाद ज्ञापित किया।

शेष रही मांगों पर सद्‌भावना पूर्वक विचार करने का वादा शिक्षा राज्य मंत्री द्वारा किया गया।

गतिविधि

सरगुजा विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़) इकाई उद्घाटन कार्यक्रम

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का व्यापक, विस्तार सम्पूर्ण देश में निरन्तर बढ़ रहा है, आज संगठन के द्वारा 24 राज्यों में संगठन का कार्य विद्यमान है, 35 राज्य स्तरीय संगठनों और 60 विश्वविद्यालयों में महासंघ 70 में सजीव सम्पर्क है। इसी कारण संगठन का अखिल भारतीय स्वरूप है। राष्ट्रीय हमारी सोच है इसी कारण राष्ट्रीय शब्द इसमें जोड़ा गया है। ये विचार अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने 'सरगुजा विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ' के गठन के उद्घाटन समारोह में मुख्यवक्ता के रूप में शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए प्रकट किये। उन्होंने कहा कि देश में शिक्षा व्यवस्था में राष्ट्रीय अस्मिता, चरित्र-निर्माण, शोध आदि का समावेश हो, यह तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की पुनर्रचना की जाये। उन्होंने कहा कि शिक्षा मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी होनी चाहिए, इसी कारण संगठन अखिल भारतीय स्तर पर सामाजिक सरोकार एवं वैचारिक प्रबोधन के कार्य करता है।

शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय महामंत्री प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल ने कहा कि शैक्षिक उन्नयन, शोधपरक शिक्षा तभी सम्भव है जब उच्च शिक्षा में सम्पूर्ण स्वायत्तता हो। शिक्षा के अनियंत्रित विस्तार को रोकने के लिए एक नियामक तंत्र की आवश्यकता है। नियामक तंत्र में शिक्षकों का ही प्रतिनिधित्व होना चाहिए। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण देश में समान वेतन, समान पदनाम एवं शिक्षकों की समान सेवाशर्तें होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में आधारभूत रचना, शोध सुविधाएं, आधुनिक प्रयोगशालाएं, स्मार्ट क्लासरूम, ई-लाइब्रेरी होनी चाहिए इसके लिए राज्य सरकारें व केन्द्र सरकारें सकल घरेलू उत्पाद का अधिक व्यय करें।

इससे पूर्व सरस्वती महाविद्यालय, अम्बिकापुर के सभाकक्ष में आयोजित इस कार्यक्रम का शुभारम्भ भारतमाता एवं माँ सरस्वती के चित्र पर प्रो. रंगा एवं डॉ. बी.पी. तिवारी, प्राचार्य सरस्वती महाविद्यालय ने किया। इस अवसर पर सरगुजा विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ की नवीन कार्यकारिणी की घोषणा राष्ट्रीय संगठन मंत्री ने की।

म.प्र. शिक्षक संघ द्वारा निजीकरण का विरोध

स्कूल शिक्षा विभाग में किये जा रहे परिवर्तन में संशोधन

मध्यप्रदेश शिक्षक संघ की ओर से प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, प्रदेश के मुख्यमंत्री एवं शिक्षामंत्री को पत्र भेजकर अपना विरोध दर्ज कराया। प्रदेश अध्यक्ष ने बताया कि पूर्व की भारत सरकार के योजना आयोग ने एक प्रस्ताव पारित कर पूरे देश के सभी प्रदेशों के सरकारी स्कूलों को पीपीपी मोड पर चलाने की योजना बनाई थी। उक्त योजना को पूरे देश के प्रदेशों में लागू करने हेतु वर्तमान सरकार द्वारा कार्यवाही की जा रही है। जिसके तहत सरकारी स्कूलों को निजी हाथों में सौंपने की योजना है। इस योजना से शिक्षा का व्यावसायीकरण होगा तथा शिक्षा से सरकार का नियंत्रण समाप्त हो जायेगा, जिससे शिक्षा पूर्णत: निजी हाथों में चली जायेगी। इसके गम्भीर परिणाम होंगे। वर्तमान में अशासकीय विद्यालयों में फीस, ड्रेस, किताबों के माध्यम से अभिभावकों को लूटने का कार्य हो रहा है। जब शिक्षा पूर्णत: निजी हाथों में चली जायेगी तो शिक्षा आम आदमी से काफी दूर होगी। वहीं दूसरी ओर सरकारी स्कूलों की बहुमूल्य जमीनों का व्यावसायीकरण हो जायेगा। अत: उक्त योजना पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है तथा यह मेरा अनुरोध है कि सरकारी स्कूलों को निजी हाथों में न सौंपा जाय।

देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। किन्तु शिक्षा अधिकार अधिनियम के तहत केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के द्वारा पूरे देश में कक्षा-6 से 8 तक के विद्यालयों में शिक्षकों की जो पद संरचना लागू की गई है उसमें भाषा का एक पद दिया गया है जिससे राज्य सरकारों के द्वारा इस एक पद पर अंग्रेजी भाषा के शिक्षक पदस्थ किये जाते हैं। जिससे हमारी राष्ट्रभाषा का शिक्षण कार्य सही तरीके से नहीं हो पा रहा है। अत: उक्त पद संरचना में संशोधन करते हुए हिन्दी भाषा का एक अतिरिक्त पद स्वीकृत करने का निर्णय हो जिससे हमारे देश की आगामी पीढ़ी को हिन्दी का ज्ञान हो सके।

मध्यप्रदेश शिक्षक संघ, शाजापुर जिला बैठक सम्पन्न

शिक्षक राष्ट्र, शिक्षा और छात्र हित में कार्य करें

म.प्र. शिक्षक संघ बढ़िया कार्य कर रहा है। शिक्षकों को राष्ट्र शिक्षा और छात्र हित में कार्य करना चाहिए। यह बात शिक्षक संघ के संगठन मंत्री मालवा क्षेत्र देवकृष्ण व्यास ने कही। वे म.प्र. शिक्षक संघ की जिला स्तरीय पदाधिकारियों की बैठक में बोल रहे थे। बैठक शासकीय बालक उमावि क्रमांक 2 में हुई। व्यास के अलावा अतिथि रा.स्व. संघ के विभाग प्रचारक विनय दीक्षित, सहायक संचालक शिक्षा शाजापुर विवेक दुबे एवं संघचालक हीरालाल कसेरा थे। अतिथि परिचय जिला संयोजक महेश कटारिया ने दिया। संघ का वार्षिक वृत्त वाचन जिलाध्यक्ष भंवर सिंह राठौड़ ने किया। सहायक संचालक शिक्षा दुबे ने रा.स्व.संघ की अ.भा. प्रतिनिधि सभा में लाए गए प्रस्ताव एवं आगामी कार्ययोजना बताई। व्यास ने शासकीय स्कूलों को निजी संस्थानों को सौंपने की सरकार की योजना की निंदा की। इसका पदाधिकारियों ने समर्थन किया और प्रस्ताव का जिलास्तर पर विरोध करने का आह्वान किया। श्री विनय दीक्षित ने शिक्षकों द्वारा राष्ट्रहित में शिक्षा पर प्रकाश डाला। आगामी माह में म.प्र. जिलास्तरीय सम्मेलन किए जाने पर सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया। संचालन प्रेमनारायण मंडलोई ने किया। आभार मनोज दुबे ने माना।

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर द्वारा आयोजित हुई शैक्षिक संगोष्ठी

'कैसा हो माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम'

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर द्वारा 'कैसा हो माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन 26 अप्रेल 2015 रविवार को आदर्श विद्या मन्दिर उच्च प्राथमिक विद्यालय राजापार्क, जयपुर में किया गया।

उद्घाटन सत्र में संस्थान के उपाध्यक्ष प्रो. जे.पी. सिंघल ने बताया कि पाठ्यक्रम का केन्द्र शिक्षक नहीं होकर हमारा विद्यार्थी होना चाहिए जिसके निर्माण हेतु पाठ्यक्रम निर्माण की बात कर रहे हैं। पाठ्यक्रम में खण्ड-खण्ड शिक्षा की बात करते हैं जबकि शिक्षा में समग्रता और एकरूपता लाई जानी चाहिए। शिक्षा ज्ञान देने वाली, सृजनात्मक, रचनात्मकता देने वाली होनी चाहिए। वहीं हमारी शिक्षा नवाचार को प्रोत्साहित करे। पाठ्यक्रमों का दृष्टिकोण भारतीय होना चाहिए जहाँ महाराणा प्रताप, अशोक महान् को पढ़ाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रमों का उद्देश्य स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा होनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द का कथन दुहराते हुए प्रो. सिंघल ने बताया कि विद्यार्थी में अपने अन्तर्निहित गुणों को बाहर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा, चरित्र निर्माण एवं मानव निर्माण की होनी चाहिए धन कमाना दूसरी प्राथमिकता होनी चाहिए। शिक्षा में कौशल विकास का होना नितान्त आवश्यक है जिससे विद्यार्थी अपना जीवन चला सके। वहीं शिक्षा व्यवहार पर आधारित होनी चाहिए केवल सिद्धान्तों पर आधारित नहीं। शिक्षा में राजस्थान की पृष्ठभूमि का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

संगोष्ठी के प्रथम सत्र में सकारात्मक शिक्षण बिन्दुओं का समावेश एवं समग्र राजस्थान का विषयानुसार पाठ्यपुस्तकों में प्रतिनिधित्व विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर एवं शोधनिदेशक प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय ने बताया कि हमारे पाठ्यक्रमों में राष्ट्रीय विचारधारा पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने हिन्दी विषय में व्याकरण की महत्ता पर प्रकाश डाला और बताया कि चित्रकूट में पूरी भारतीय संस्कृति साकार होती है, इसीलिए ऐसे विषयों को पाठ्यक्रमों में स्थान दिया जाना चाहिए। वहीं अंग्रेजी भाषा में भारतीय लेखकों और उनके जीवन से प्रेरणा का पाठ्यक्रमों में समावेश होना चाहिए। अनेक विशेषज्ञों ने पाठ्यक्रमों से संबंधित राष्ट्रीयता, भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित अनेक बातों को जोड़ने हेतु अपने पक्ष रखे। शिक्षा सुसंस्कारित बनाने वाली व आँख व पाँख देने वाली अर्थात अंतर्दृष्टि व क्षमता विकसित करने वाली होनी चाहिए।

द्वितीय सत्र में सेवानिवृत्त प्राचार्य, शैक्षिक मंथन के उपसंपादक एवं बाल एवं विज्ञान विषयों के लेखक श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी ने विषय वस्तु से कौशल विकास एवं जिज्ञासा जागरण तथा नवाचारों को प्रयोग पर आधारित कैसे बनाया जाऐ पर संभागियों के विचार आमन्त्रित किये, जिसमें राजस्थान के विभिन्न शिक्षाविदों ने अलग अलग दृष्टिकोण से शिक्षा में अनेक बिन्दुओं के समावेश की बात कही, जिनमें शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का समग्र विकास कर समाज निर्माण करना मुख्य बिन्दु था। राज्यों में माध्यमिक शिक्षा बोर्डों की स्थापना इसीलिए की गई कि हर राज्य की विभिन्नताओं का पाठ्यक्रम में समावेश हो सके वहीं विद्यार्थियों की क्षमता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिए, स्कूल की सम्पूर्ण गतिविधियां पाठ्यचर्या को पूर्ण करने वाली हों, अनिवार्य एवं ऐच्छिक कौशल का विकास, प्रायोगिक ज्ञान के साथ नैतिक शिक्षा, शून्य का महत्त्व व शून्य का भारत में अविष्कार के बारे में जानकारी दी गई।

पाठ्यक्रमों के साथ एनसीसी, एनएसएस, स्काउटिंग एवं एयर विंग का अनिवार्य किया जाना जिससे विद्यार्थियों का समग्र विकास हो सके। गूगल से अनूवादित पुस्तकों के प्रयोग के बजाय अनुभवी लेखकों से पुस्तक का लेखन हो जिनमें भारतीयता का पुट स्पष्ट जाहिर हो। बालक को शिक्षा और दीक्षा दोनों दी जानी चाहिए। कौशल विकास पारम्परिक कुशल व्यक्ति के माध्यम से होना चाहिए, वैदिक गणित, मैजिक गणित के रूप में प्रयोग की जानी चाहिए, पाठ्यक्रमों में अभिव्यक्ति की अभिरूचि का समावेश होना चाहिए।

तृतीय सत्र में डॉ. राजेन्द्र शर्मा सहायक निदेशक, आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा ने योग शिक्षा की वर्तमान में आवश्यकता व महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उसका पाठ्यक्रम में समावेश होना चाहिए। कक्षा नौ से बारह तक के समस्त विषयों की विषय वस्तु की समीक्षा एवं अपेक्षित परिवर्तन पर विषय विशेषज्ञों से सुझाव लिए गए।

संस्थान के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने बताया कि भावी पाठ्यक्रम में ऐसी विषय वस्तु दी जा सके, जिससे बालकों में चरित्र निर्माण के साथ उत्तरदायी नागरिक बनने की भावना का विकास हो साथ ही कौशल विकास एवं ज्ञानार्जन से वो राष्ट्र का नाम ऊँचा कर सकें। पाठ्यक्रम से विद्यार्थी के मन में गर्व एवं गौरव का भाव जगे। ऐसी पाठ्य सामग्री का समावेश होना चाहिए। पाठ्यक्रम परिस्थिति एवं देश के अनुरूप होना चाहिए।

अन्त में संगोष्ठी संयोजक भरत शर्मा ने बताया कि इस संगोष्ठी के तीनों सत्रों में विभिन्न विषयों पर गहन विचार विमर्श किया गया और इन सभी बातों को समग्र रूप से पाठ्यक्रमों में समावेशित करने की अनुशंषा राज्य सरकार को भिजवाई जाएगी। संगोष्ठी का संयोजन बसन्त जिन्दल, नोरंग सहाय, आलोक चतुर्वेदी, लोकेश्वर प्रताप सिंह तथा डॉ. योगेश कुमार गुप्ता ने किया।